विमुक्त, घुमन्तू एवं अन्य जनजातियों पर केंद्रित

जून, 2002

बूधन

संयुक्तांक

4 एवं 5

सहयोग राशिः 15 रुपये

विमुक्त, घुमन्तू व अन्य जनजातियों पर केंद्रित

बूधन

वर्ष : 2 अंक : 4 व 5 जून, 2002

संपादकीय व प्रबन्ध कार्यालय
महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान
बी-3, सी ई एल अपार्टमेंट्स
बी-14, वसुन्धरा एन्क्लेव
दिल्ली-110096
फोन : 2618064, 4922803
E-mail : rmrc.bol.net.in
Web site:www.rmrcindia.org

इस अंक में

गतिविधियाँ

हाशिए के लोग

आजादी के साथ ही हम भारतवासियों ने एक ऐसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की आधारशिला रखी थी जिसमें प्रत्येक नागरिक को न्याय, समता और स्वतंत्रता का अधिकार होगा, जिसमें भाईचारा होगा और जिसमें व्यक्ति की अस्मिता सुनिश्चित होगी। यही वे सपने थे जिनके लिए आजादी की लड़ाई लड़ी गई और जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग ने खुलकर भाग लिया था। यह बात और है कि आजादी के बाद कुछ लोगों का ही नाम इस स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ पाया; विशेषत: वे लोग जो अक्सर ही ऊँची जातियों से थे। आजादी की लड़ाई में आदिवासियों के योगदान को तो लगभग भुला ही दिया गया है। यही नहीं अपितु कई ऐसी भी जनजातियाँ हैं जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्य ने 'अपराधी जनजाति' घोषित किया था, उनके दु:खों का घड़ा तो आज भी नहीं भरा है। आज भी उनके साथ अमानवीय व्यवहार किये जाते हैं।

आजादी के बाद का हमारा यह समाज आज कहाँ पहुँचा है; हम सभी को सोचने, समझने और साथ ही हस्तक्षेप करने की जरूरत है। पिछले 52 वर्षों से भारतवर्ष में एक धर्मनिरपेक्ष ढाँचा साँस ले रहा था। परन्तु पहले बाबरी मस्जिद का ढहाया जाना उसके बाद पूरे देश में सांप्रदायिकता का माहौल और अब गुजरात की तबाही और निर्दोष लोगों की मौतों ने धर्मनिरपेक्षता में विश्वास रखनेवाले लोगों के लिए भारी चुनौती खड़ी की है। साथ ही गुजरात दंगों में आदिवासियों के भाग लेने की घटना शायद पहली बार सामने आई है। इससे पूर्व धर्मों को लेकर आदिवासी इलाकों में छिटपुट घटनाएँ होती रही हैं। परन्तु जिस स्तर पर तथा जिस साजिश के तहत गुजरात में घटनाएँ घटी हैं, वह भविष्य के लिए चिंता का कारण है, क्योंकि सच्चाई यह है कि आदिवासी न तो हिन्दू होता है और न ही मुसलमान।

दरअसल आजादी के इन 55 वर्षों में सदियों से चले आ रहे भारतीय समाज के मूल ढाँचे और प्रशासनिक तंत्र में कुछ भी तो नहीं बदला। समाज का जातियता का आधार विकराल रूप में वहीं का वहीं है; अंग्रेजी तथा अग्रेजियत वर्ग का भारतीय भाषा तथा संस्कृति पर वर्चस्व बना हुआ है; राजनैतिक पार्टियाँ खुले तौर पर धर्म और जाति के आधार पर चुनाव लड़ती हैं और वोट माँगती हैं; दलितों, स्त्रियों का शोषण बरकरार है। जल, जंगल, जमीन व खनिज पदार्थों जैसी प्राकृतिक संपदाओं से सम्पन्न आदिवासी क्षेत्रों का, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों द्वारा दोहन आज खुलेआम किया जा रहा है। नतीजन अपनी सभी संपदायों से वंचित होते हुए आज आदिवासी समाज हाशिए पर पहुँच गया है। वस्तुत: व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए जब समाज को दरकिनार कर दिया जाता है तो समाजों के अन्दर व्यक्तिवाद ही पनपता और बढ़ता है। जाहिर है कि ऐसी भ्रामक विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत धीरे-धीरे समाज का बड़ा हिस्सा हाशिए पर पहुँच गया है, पहुँच रहा है। इसीलिए आज देश का मजदूर, किसान और करोड़ों की संख्या में रोजगार की तलाश में भटकता हुआ युवा-वर्ग भुखमरी और आत्महत्या को मजबूर है। फिर सवाल उठता है कि समाज में क्या बदला?

कभी 1936 में जवाहर लाल नेहरू ने कहा था – "अपराधी जनजाति अधिनियम के विनाशकारी प्रावधान को लेकर मैं चिंतित हूँ। यह नागरिक स्वतंत्रता का निषेध करता है। इसकी कार्यप्रणाली पर व्यापक रूप में विचार किया जाना चाहिए और कोशिश की जानी चाहिए कि इसे संविधान से हटाया जाए। किसी भी जनजाति को 'अपराधी' करार नहीं दिया जा सकता। यह सिद्धांत, न्याय और अपराधियों से निपटने के किसी भी सभ्य सिद्धांत से मेल नहीं खाता।"

क्या आज भी हमारे समाज के एक बड़े वर्ग समूह को जाति के आधार पर चोरी इत्यादि की वारदातों के लिए बराबर जिम्मेदार नहीं ठहराया जाता है? क्या उन्हें शक के आधार पर जब-तब हिरासत में नहीं ले लिया जाता है? और क्या हिरासत

में हुई मौतों में से अधिकांशतः इन्हीं जनजातियों के लोगों की नहीं होतीं? आज भी साँसी, पारधी, कंजर, बावरिया इत्यादि अनेक जनजातियों के लोग, अपनी उच्च शिक्षा के बावजूद, खौफ की जिन्दगी व्यतीत करते हैं। इन लोगों के अनुसार इनकी सबसे बड़ी समस्या 'पुलिसिया अत्याचार' है। आज जबकि यह पूरा का पूरा समाज मुख्यधारा से जुड़ना चाहता है, उसमें मिलना चाहता है परन्तु प्रशासन पूर्वाग्रहों के कारण उन्हें इससे वंचित कर रहा है, उनके मूलभूत अधिकारों, सुविधाओं का खुलेआम उल्लंघन कर रहा है। आज संविधान की धाराओं की अवहेलना प्रशासनिक तंत्रों द्वारा हर जगह, हर समय की जा रही है। यह सच हो सकता है कि इन जातियों में कई लोग अपने जीविकोपार्जन के लिए देशी शराब बनाने इत्यादि जैसे कार्यों में लगे पाए जाते हों पर यह उनकी पहचान नहीं हैं। और न ही उनकी प्रवृत्ति का द्योतक है। इसका कारण पूर्णतः आर्थिक है।

सच तो यह है कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच लड़ाई करा कर फायदा उठाना और अपनी थैली भरना हमारे समाज के एक वर्ग विशेष का मकसद रहा है। ये शक्तियाँ देशवासियों को आपस में लड़ाने की जमीन तैयार करती हैं और धर्म और जाति के नाम पर पड़े पैमाने पर दंगा कराती हैं जिसमें आम आदमी मरता है। कहीं कोई दलित मरता है, तो कहीं आदिवासी। इसका शिकार कभी मजदूर होता है, कभी किसान, तो कभी पिछड़ा आदमी। समाज के दंगे निश्चित ही भारतीय पूँजीपतियों और विदेशी पूँजीपतियों के हाथों को मजबूत करते हैं।

परन्तु आज हम गफलत में हैं। आज हमें समझना होगा कि मजदूर, किसान, आदिवासी, दलित की भलाई उसकी एकता में है, कि जाति-व्यवस्था भारतीय समाज का बहुत बड़ा कलंक है। साथ ही इसी जाति-व्यवस्था का फायदा उठाकर ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा किया गया वर्गीकरण 'अपराधी जनजाति' उससे भी बड़ा कलंक है। हमें आपसी झगड़े मिटाने होंगे और जाति व्यवस्था को समूल नष्ट करना होगा। आज आम जनता को यह जानने की जरूरत है कि राजनीति के अखाड़े में क्या-क्या दाँव-पेंच चलते हैं, क्योंकि जनता इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती और क्योंकि इसका भुगतान भी आम जनता को ही करना पड़ता है।

यही बातें हैं जिन्हें लेकर 'बूधन' का यह अंक आप तक पहुँच रहा है। इस अंक में जनजातीय आवाज और हिंसा तथा दलित और आदिवासियों को केंद्र में रखकर महत्वपूर्ण आलेख सम्मिलित किए गए हैं। हिन्दुस्तान की कई अन्य जनजातियों पर परिचयात्मक लेख के साथ-साथ इनके शिक्षा और विकास से संबंधित मुद्दों पर भी आलेख दिए गए हैं। आदिवासी अभियान से जुड़ी इस पत्रिका में कंजरभाट, साँसी, राजगोंड, बंजारा, बोडो तथा अलक्षितों पर और उनके अभियान पर, साथ ही उनके बीच हो रहे अपनी भाषा व संस्कृति की पहचान के उभार पर विशेष सामग्री मिलेगी। नव गठित राज्य छत्तीसगढ़ के नगरनार में आदिवासियों द्वारा अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई लड़ी जा रही है। इस पर भी एक आलेख सम्मिलित किया गया है। यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दुस्तान के जो जनसमुदाय जाति व्यवस्था और धर्म के प्रपंच से मुक्त रहे हैं वे भी अब अपने अस्तित्व बनाए रखने तथा राजनीतिक लाभ उठाने के लिए जाति और धर्म के जाल की ओर बढ़ रहे हैं। यह एक प्रकार से भारतीय समाज में जाति और धर्म के बढ़ते हुए खतरनाक प्रभाव का ही प्रमाण है। जनजातीय समाज, साहित्य और वैकल्पिक लेखन आज समसामयिक मुद्दा है। इस विषय पर बहस छेड़ने के विचार से आलेख संगृहीत है और साथ ही कहानियाँ, कविताएँ और रपट भी।

आपका पत्र मिला

बूधन के तीन अंक अब तक मिले हैं। शांति किन्डो का शोधपरक लेख (परहिया) दिसम्बर अंक में छपा था, बधाई। असुर/कोरवा/बिरजिया/बिरहोर आदिम जन झारखंड जातियों पर भी उनके मौलिक व अप्रकाशित लेख तैयार हैं। उनके ये तथ्यपरक व वस्तुगत लेख बूधन में धारावाही छापें। कभी एक विशेष अंक पलामू के विमुक्त, घुमन्तू व अन्य जनजातियों पर केंद्रित करें।

रामेश्वरम
पलामू, झारखण्ड

एक सेवानिंवृत्त द्वारा संचालित निःशुल्क वाचनालय स्थापित पत्र-पत्रिकाओं के अलावा विभिन्न स्रोतों से जुटायी गई गृह पत्रिकाएँ, लघु पत्रिकाएँ तथा अन्य सूचनाप्रद साहित्य के माध्यम से वाचन संस्कृति प्रसारार्थ प्रयासरत है। म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद की 'चौमासा' पत्रिका भी है। जनजातियों पर केंद्रित आपकी पत्रिका 'बूधन' का कोई पुराना अंक नमूना/ भेंट स्वरूप कृपया प्रेषित करें।

केशव
विवेकानन्द वाचनालय,
भोपाल, म.प्र.

आज सूचना एवं प्रौद्योगिकी के युग में हमारी पूरी शिक्षा व्यवस्था, तकनीकी पाठ्यक्रम के इर्द-गिर्द घूमने को आतुर हैं। जब आदिवासी और शिक्षा के स्वरूप पर बात हो तो यह ध्यान देना ही होगा कि निकट समय में हमारी अर्थव्यवस्था क्या होगी? टेक्नॉलाजी एवं नये पाठ्यक्रमों के साथ आगे बढ़कर आदिवासियों की कितनी आबादी अपनी आजीविका चला पाएगी? यह विषय चिंतनीय है।

डॉ. मनीषा महापात्र
विलासपुर, छत्तीसगढ़

आपके संपादन में प्रकाशित बूधन की जानकारी मिली। बूधन अंक-3 में एक आलेख 'पाठा के आदिवासी कोल' प्रस्तुत किया गया है। अन्य महत्वपूर्ण सामग्री के साथ उक्त आलेख भी पढ़ने की मन में इच्छा है। मैं पाठा क्षेत्र की स्थिति खासकर आदिवासी समस्याओं पर और उसके समाधान पर समाचार पत्रों में पढ़ता रहता हूँ। मैं स्वयं पत्रकारिता क्षेत्र से जुड़ा हूँ तथा हिन्दी साहित्य का पाठक हूँ। मैं बूधन का नियमित पाठक बनने का इच्छुक हूँ।

रामपाल त्रिपाठी,
चित्रकूट, उ.प्र.

बूधन अंक 3 पढ़ा, खुशी हुई। कर्नाटक के घुमन्तू जातियों के बारे में मैं और लिख के भेजूंगा। घुमन्तू जनजातियों के बारे में जो आप अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं और उनकी अभीवृद्धि चाह रहे हैं। इसलिए आपको और सभी बूधन चिंतको को शुभकामना।

डॉ. के.एम. मैत्रि
हंपी, कर्नाटक

''आखिर आज स्त्रियाँ जिस स्थिति में हैं, उसका कारण उनके दिमाग की बनावट, उनका लिंग नहीं है। सारे दिमाग स्त्री के खून से ही बनकर निकलते हैं। क्यूरी माँ-बेटियों ने विज्ञान के नोबेल पुरस्कारों को लेकर दिखला दिया कि दिमाग सिर्फ मर्द की बपौती नहीं है। असल कारण तो है स्त्री की आर्थिक मजबूरी, और बचपन से ही दी गई स्त्रैण-शिक्षा। स्त्री के दिल पर बचपन से नक्श कराया जाता है, कि पुरुष की स्त्री बनना-यौन संबंध-ही उसके लिए एकमात्र जीविका का रास्ता है।'' – राहुल सांकृत्यायन

'मानव समाज', पृष्ठ-204

डॉ. गणेश देवी अंग्रेजी के जाने-माने विद्वान तथा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत लेखक हैं। वे एम.एस. विश्वविद्यालय, वड़ोदरा में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। वे आदिवासियों, दलितों, स्त्रियों तथा 'तथाकथित अपराधी जनजातियों' के उत्थान के प्रति समर्पित कार्यकर्त्ता हैं। इन्हीं उपेक्षित वर्गों के उत्थान के कार्य हेतु उन्होंने प्रोफेसर पद का त्याग किया। वर्तमान में उन्होंने वड़ोदरा के तेजगढ़ क्षेत्र में 'ट्राइबल अकादमी' की स्थापना की जिसके वे निदेशक हैं। हाल ही में गुजरात की घटनाओं में आदिवासियों के शामिल होने की बात को लेकर भारतीय समाज के प्रबुद्ध लोग चिंतित हैं। डॉ. देवी ने इन दंगा प्रभावित आदिवासी क्षेत्रों पर अंग्रेजी में एक महत्वपूर्ण लेख लिखा था जिसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

जनजातीय आवाज और हिंसा

■ गणेश देवी

27 फरवरी और 4 मार्च के बीच गुजरात जल रहा था, पर गुजरात की पूर्वी सीमा पर स्थित जनजातीय पट्टी शांत थी। इसका एक मात्र अपवाद पंचमहाल के दो जिले थे जिनके लिए गोधरा मुख्य शहर है। अन्य जनजातीय क्षेत्रों में हिन्दू, मुसलमान और जनजातीय लोग शांतिपूर्ण सौहार्द के साथ रह रहे थे। शहरों से लौटती हुई जनजातीय मजदूरों की लम्बी कतारों का दृश्य हृदय में अशांति पैदा कर रहा था। ये लोग कर्फ्यू ग्रस्त शहरों से सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर अपने घरों को वापस जा रहे थे। पीठ तथा सिर पर अपनी सारी पूँजी रखे हुए तथा अपने दिलों में भारी दुःखों को लिए हुए एक फंसे जानवर के समान भयभीत ये लोग चुपचाप चले जा रहे थे।

प्रतिवर्ष लगभग 60 हजार जनजातीय मजदूर अक्टूबर से मार्च महीनों में रोजगार की तलाश में बड़ौदा आते हैं। दंगा शुरू होने के तीसरे दिन से वे अपने गाँव वापस जाना शुरू हो गए। उन्हें यातायात के कोई साधन उपलब्ध नहीं थे। अतः एक विध्वंश हुए देश से भागते हुए शरणार्थियों की तरह उन्होंने पैदल ही जाने का फैसला किया था।

किसी भी जनजातीय गाँव में जलाई जाने वाली पहली मुस्लिम दुकान तेजगढ़ की थी। आगजनी की यह घटना 4 मार्च की है। उसी रात दो और दुकानों में आग लगा दी गई। बड़ौदा (ग्रामीण) पुलिस ने गोधरा घटना पर इतनी देर बाद प्रतिक्रिया की उम्मीद नहीं की थी। मंगलवार को वरिष्ठ डी.एस.पी. केशव कुमार, जिन्होंने भारतीय दण्ड संहिता पर जनजातीय भाषा में पहली पुस्तक लिखी, ने मुझसे अपने शांति प्रयासों में साथ देने को कहा। तेजगढ़ पहुँचने पर हमने भीड़ को एक दुकान लूटकर आग लगाते देखा। डी.एस.पी. ने तुरन्त आँसू गैस का प्रयोग किया और भीड़ तितर-बितर हो गई। वहाँ से डी.एस.पी., सांसद (भाजपा) एवं पूर्व सांसद (कांग्रेस) के साथ इन्तजामात देखने के लिए छोटा उदेपुर के लिए रवाना हो गए। उन्हें छोटा उदेपुर में रात्रि गस्त के लिए सेना के पाँच ट्रकों के पहुँचने की उम्मीद थी। उस रात तेजगढ़ में सेना का कोई भी आदमी नहीं था। गाँव में और भी दुकानें और घर जलाए गए। तेजगढ़ में मुसलमानों की आबादी अत्यन्त कम है, इनमें 75 फीसदी जनजातीय लोग, 15 फीसदी हिंदू तथा 5 फीसदी मुसलमान हैं। जिन लोगों ने शुरुआती दौर में दुकानों और घरों को आग लगाया वे शराब के नशे में थे और आस-पास के गाँवों से आए थे। परन्तु जब पहला धावा सफल हुआ तब और गाँवों के लोग भी बिना किसी उकसावे के इस लूट में शामिल हो गए।

तेजगढ़ में हो रही घटनाओं के तरीके इस बात के द्योतक थे कि दंगों का सार रूप में क्रमिक विकास हो रहा था। शहरों में पहले तीन दिन के दंगे पूर्णतः पूर्व-नियोजित थे। ये धावे विस्मयकारी सुस्पष्टता वाले थे। इसके विपरीत पंचमहाल, खेड़ा और बड़ौदा जिलों के गाँव में हुए धावे भीड़ के अंध-क्रोध के नतीजे थे। उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि ये दंगे हिंसा के किसी मास्टर योजना के अंतर्गत नहीं थे। और न ही तेजगढ़ में हो रही घटनाएँ गोधरा कांड की प्रतिक्रिया स्वरूप थीं।

तेजगढ़ की मुस्लिम आबादी बिना किसी डर-भय तथा अशंका के अपने गाँव में ही रह रही थी और अपने नित्य कार्यों में लगी हुई थी। सुना जाता है कि उस दिन वहाँ के लोगों ने कुछ अन्य गाँव के मुसलमानों को धमकाया। शुरू में तेजगढ़ के मुसलमानों ने इन गाँव के मुसलमानों की रक्षा की। कहा जाता है कि इस वजह से तेजगढ़ के लोग नाराज हुए और उन्होंने तेजगढ़ के मुसलमानों के खिलाफ कड़ा रुख अपनाया। नतीजन 4 मार्च की शाम तेजगढ़ के मुसलमान की दुकान को आग लगा दी गई। ऐसा सुना जाता है कि सरपंच श्रीकृष्णकांत साह ने आगजनी करनेवाले लोगों को रोकने की कोशिश की परन्तु दबाव और धमकी के चलते उन्होंने यह प्रयास छोड़ दिया। कहते हैं आगजनी वाले लोग बाहर से आए थे। तेजगढ़ का कोई भी व्यक्ति आगजनी करनेवालों के नाम बताने को तैयार नहीं था। वे यह भी नहीं बता रहे थे कि मुस्लिम लोग क्यों दूसरे गाँव में गए और उन्होंने तेजगढ़ वापस आकर अपनी दुकान, घर तथा वाहनों को जिन्हें क्रमशः कई दिनों तक जलाया गया, जलने से रोकने की कोशिश क्यों नहीं की। कितना किरोसिन उपलब्ध था, किसने भीड़ की अगुवाई की, इन बातों की जानकारी देनेवाला भी कोई नहीं था। यह भी बताने वाला कोई नहीं था कि क्यों मुसलमानों की सम्पत्तियों को ही आग लगाई गई।

तेजगढ़ दंगाकांड इतमीनान के साथ किया गया था; हर दिन एक या दो दुकानों को जला दिया जाता था। प्रारम्भ में दंगों का केंद्र बिन्दु लिमड़ी बाजार से एक-दो किलोमीटर दूरी पर स्थित टिमला, कोरज और अचला के पंचायत क्षेत्रों से भीड़ को इकट्ठा किया गया था। पड़ोसी गाँव के लोगों को लूट में हिस्सा चाहिए था। तेजगढ़वासी अपने घरों में बंद हो गए। बाद में आधिकारिक कर्फ्यू लागू करना महज तकनीकी औपचारिकता भर थी।

गाँव की सुरक्षा हेतु उपलब्ध पुलिस बल अपनी अत्यन्त कम संख्या की वजह से दो-तीन बार भीड़ को तितर-बितर करने के बाद गाँववालों की तरह ही अकर्मण्यता की साजिश में चला गया। इस तरह तेजगढ़ दंगे के बारहवें दिन भी एक घर को आग लगाई गई और गाँव-वालों और पुलिस दोनों ने कोई बचाव नहीं किया। तेरहवें और चौदहवें दिन भी एक या दो मकानों को जलाया गया। यह विध्वंसात्मक क्रम चलता रहा। जहाँ शहरों में हुआ दंगा लक्ष्यों पर सूक्ष्मता से धावा बोलने का था, अन्य ग्रामीण क्षेत्रों का दंगा अँध प्रतिशोध के कारण था तो तेजगढ़ की घटनाएँ विधिवादी गुणों की द्योतक थी। ये घटनाएँ धीरे-धीरे की गई थी। इन घटनाओं की विधिवादी गुणवत्ताएँ इस बात की स्पष्ट द्योतक थीं कि गुजरात के इस हिस्से के दंगे में साम्प्रदायिकता पिछली सीट पर थी और जनजातीय संस्कृति ने इसे अपने काबू में कर लिया था।

अत: तेजगढ़ से 30 किलोमीटर पर स्थित पानवड़ में दो दिन बाद शुरू हुए दंगों पर जनजातियों द्वारा काबू होने की स्थिति बन चुकी थी। दंगे करनेवाले ऐसी अफवाहें

तेजगढ़ में हो रही घटनाओं के तरीके इस बात के द्योतक थे कि दंगों का सार रूप में क्रमिक विकास हो रहा था। शहरों में पहले तीन दिन के दंगे पूर्णतः पूर्व-नियोजित थे। ये धावे विस्मयकारी सुस्पष्टता वाले थे। इसके विपरीत पंचमहाल, खेड़ा और बड़ौदा जिलों के गाँव में हुए धावे भीड़ के अंध-क्रोध के नतीजे थे।

फैला चुके थे जिससे कि जनजातीय लोग भड़क उठें। जिन अफवाहों को मैंने सुना उनमें निम्नलिखित पाँच विशिष्ट हैं-

(1) जनजातियों ने स्वप्न देखा कि शाही महुआ का पेड़, जो कि राठवा लोगों का पवित्रतम पेड़ माना जाता है, काट दिया गया है और उसे रास्ता रोकने के काम में लाया जा रहा है। बाबा देव या वावो पिथोरो देव, बहुत नाराज हैं और उन्होंने उन लोगों के खिलाफ बदला लेने के लिए कहा है जिन्होंने महुए को नुकसान पहुँचाया है।

(2) पुलिस विश्वास करती है कि जनजातियों का एक विशिष्ट मंत्र पुलिस की राइफलों को नाकाम कर देगा। अत: पुलिसवाले अपने हथियार इस्तेमाल करने में भय खा रहे हैं।

(3) किसी एक बड़वा पुजारा को दैवी शक्ति मिली है जिससे कि 22 साल की उम्र में ही सबसे बड़ा बड़वा

बन गया है। इस तरह जादू के सभी पहलुओं को सीख लेने के बाद अब उसे कोई मार नहीं सकता। वही जनजातियों का प्रतिनिधित्व करेगा।

(4) मुसलमानों ने एक जनजातीय महिला के साथ बलात्कार किया है और कई लड़कियों का शहरों में बेचने के लिए अपहरण भी कर लिया है।

(5) मुसलमानों ने शोषण कर कश्मीर (एक स्थान या एक लड़की) हथिया लिया है और 50 जनजातीय औरतों को बंधक बना रखा है।

नीम के पेड़ को आगजनी करनेवालों ने आग लगा दी थी। यह पेड़ कोई एक शताब्दी से ज्यादा समय से था; और इसे जिन्दा जला दिया गया था। यह दस दिन तक धीरे-धीरे जलता रहा। अर्जुन राठवा की टिप्पणी ने यह सवाल खड़ा किया था कि, 'क्या लिमड़ा का कोई धर्म होता है सिवाय इसके कि वह राहगीरों को छाया प्रदान करता है? क्या आदिवासियों की तरह ही वह न हिन्दू होता है न ही मुसलमान?

पानवड़ की स्थिति विशिष्ट है। इसके इर्द-गिर्द लगभग 20 छोटे-बड़े गाँव हैं जहाँ पैदल चलकर थोड़े समय में ही पहुँचा जा सकता है। कई हिन्दू पंथ इस इलाके में विगत कई वर्षों से सक्रिय रहे हैं। कुछ जैन मुनियों, जो कि शायद राजस्थान या मध्यप्रदेश के हैं, का भी पास के कावड़ा गाँव के लोगों पर काफी प्रभाव है। पानवड़ के मुसलमान काफी धनी हैं और उनमें से कई सूदखोरी का धंधा करते हैं। वे लोगों से 60 से 120 प्रतिशत तक सूद वसूल करते हैं।

यह नहीं कहा जा सकता कि यह सूदखोरों के प्रति नफरत या अफवाहों के अनुसार पुलिस की योग्यता में जादुई रुकावट अथवा किसी अन्य बात का नतीजा था, परन्तु पानवड़ में जनजातियों की भारी भीड़ एकत्रित थी। समाचार पत्रों के अनुसार लगभग पाँच हजार की भीड़ थी। परन्तु यदि यह माना जाए कि प्रत्येक गाँव से 50 से 100 लोग थे जिन्होंने इस लूटपाट में हिस्सा लिया तो भी किसी एक समय एकत्रित लोगों की संख्या 2000 से कुछ कम ही बैठती है।

तेजगढ़ की घटनाओं का विधिवादी (ritualistic) स्वरूप अपने विस्तृत रूप में पानवड़ में दिखाई दे रहा था। इस बार जनजातीय लोग अपने पारम्परिक तीर-धनुष लिए हुए थे। सामान्यतया ये लोग तीर का हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं करते। किसी को जान से मारने के लिए ये तेज धारवाले पालियु या धारियु का इस्तेमाल करते हैं; और जब ये किसी चोर अथवा दुश्मन से लड़ते हैं तो गन (बन्दूक) का इस्तेमाल करते हैं। उनमें से अनेक लोगों के पास लाइसेंसी बन्दूकें हैं; और अन्य मध्य प्रदेश, जो कि कुछ ही किलोमीटर दूर है, से गैर कानूनी तरीके से हथियार खरीद लेते हैं। केवल बच्चे ही तीर से चिड़ियों का शिकार करते हैं। यही कारण है कि इस इलाके में चिड़िया दिखाई नहीं पड़तीं।

अत: जब पानवड़ में भीड़ ने आक्रमण किया तो वे अपने साथ तीर-धनुष धार्मिक शोभा रूप में ही ले गए थे। परन्तु जब उन्होंने देखा कि मंत्र पुलिसवालों को गोलियाँ चलाने से रोकने में असमर्थ हैं तो अगले दिन वे अपनी बन्दूकें भी ले आए। वरिष्ठ डी.एस.पी. केशव कुमार, जो कि बहादुर और निष्ठावान अफसर हैं, ने मुझे बताया कि उन्हें इस दौरान ऐसे भी जनजातीय लोग मिले जिन्होंने अपनी छाती खोलकर मारने के लिए ललकारा। ऐसा अटूट विश्वास था उन्हें ऐसी अफवाह वाले मंत्र पर।

जनजातियों के ख्याल से इन दंगों के विषय में कुछ प्रश्न उठाना आवश्यक है: क्या छोटा उदेपुर की जनजातियों के पास विद्रोह की कोई योजना थी? क्या राज्य के खिलाफ सशस्त्र विरोध पर आधारित कोई प्रत्यक्ष अथवा छद्म आंदोलन इस क्षेत्र में था? क्या सांप्रदायिक भाजपा ने जनजातीय जीवन में इतना दखल बना लिया कि हिन्दुत्व की भावना जनजातीय संस्कृति के ऊपर हावी हो गई? दूसरे शब्दों में जनजातीय क्षेत्रों के मार्च, 2002 के दंगों में मुसलमानों के दमन का कितना हिस्सा जनजातीय चरित्र रखता था और इसका कितना हिस्सा भाजपा की सफलताओं के कारण हुआ? इन दंगों तथा जनजातीय स्थिति को

समझने के लिए इन सवालों के जवाब अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इस पूरी घटना की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि तेजगढ़ और पानवड़ में मुसलमानों का दमन आकस्मिक था। भले ही गुजरात के अन्य क्षेत्रों में हुए दंगे संघ परिवार द्वारा सुनियोजित ढंग से किए गए थे। तेजगढ़ ने प्रतिक्रिया में पाँच दिन लगाए जबकि पानवड़ में नौ दिन बाद प्रतिक्रिया हुई। इसके अलावा कश्मीर, अयोध्या अथवा सीमापार से होनेवाले आतंकवाद जैसे मुद्दों की जानकारी इन जनजातीय गाँवों में लगभग शून्य है। गाँवों के सरपंच असाक्षर अथवा अर्द्धसाक्षर हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इन गाँवों से लगभग अछूता है।

उन्हीं दिनों मेरे एक नौजवान शिक्षित राठवा मित्र ने अपनी लिखी हुई एक टिप्पणी मुझे भेजी। इस टिप्पणी में एक पेड़ के मरने से उत्पन्न उसके चिंतन थे। यह एक बहुत बड़ा नीम का पेड़ था जिसे गुजराती में लिमड़ा कहते हैं जिसके नाम पर उस क्षेत्र का नाम 'लिमड़ी बाजार' पड़ा, जहाँ आगजनी की घटनाएँ घट रही थीं। नीम के पेड़ को आगजनी करनेवालों ने आग लगा दी थी। यह पेड़ कोई एक शताब्दी से ज्यादा समय से था; और इसे जिन्दा जला दिया गया था। यह दस दिन तक धीरे-धीरे जलता रहा। अर्जुन राठवा की टिप्पणी ने यह सवाल खड़ा किया था कि, 'क्या लिमड़ा का कोई धर्म होता है सिवाय इसके कि वह राहग़ीरों को छाया प्रदान करता है? क्या आदिवासियों की तरह ही वह न हिन्दू होता है न ही मुसलमान? तो फिर क्यों उन्होंने उसे नष्ट कर दिया? क्या वह किसी का दुश्मन था? आदिवासियों को भी नीम के पेड़ की तरह ही नष्ट किया जा रहा है। वे भी न हिंदू हैं न मुसलमान और अब तो उन्हें पूर्णत: विस्थापित किया जा रहा है।

मैं इस टिप्पणी को जनजातियों के साम्प्रदायिक राजनीति में गैर-शरीकी का प्रतीक मानता हूँ। तो सवाल उठता है कि मुस्लिम समूह पर जो अत्याचार किये गए उसका स्रोत क्या था? इस सवाल का जो सबसे संभावित उत्तर प्रतीत होता है वह है कि जनजातीय लोग बनियों की तरफ से एक छद्म युद्ध करने के लिए मजबूर किए गए।

गुजरात दंगों के शुरुआती दिनों की दो घटनाएँ इस बात को दर्शाएँगी कि जनजातीय लोग किसी सांप्रदायिक दंगे में भाग लेने के इच्छुक नहीं थे। 27 फरवरी की शाम पंचमहाल से मुस्लिम यात्रियों को लिये हुए एक ट्रक तेजगढ़ से गुजरता हुआ एक जीप से टकरा गया और जीप सड़क के किनारे पहुँच गई। ये जीपें, जो कि यहाँ के आवागमन के मुख्य साधन हैं, खचाखच भरी होती हैं और सवारियाँ चारों तरफ लटकी रहती हैं।

यह जीप सड़क के इतने किनारे पहुँच गई कि चार यात्री, जिनमें तीन आदमी और एक औरत थी, ने वाहन तथा एक पेड़ के बीच में दबकर, घटनास्थल पर ही दम

ऐसा लगता है गाँव के इन सांप्रदायिक तत्वों ने आगामी 2 और 3 मार्च को सांप्रदायिकता के साथ व्यापार के मुद्दे को जोड़ा जो ज्यादा मान्य था। उन्होंने कहा कि मुस्लिम व्यापारी बहुत घमंडी हो गए हैं और यदि हम जनजातीय लोगों का ही मुहावरा इस्तेमाल करें तो, 'उन पर बहुत चर्बी चढ़ गई है।' उनका यह तर्क काम कर गया और 4 मार्च की शाम, जबकि मुख्यमंत्री मोदी के बेसिर-पैर वाले बयान के अनुसार कि '72 घंटे के अन्दर ही दंगों पर काबू पा लिया गया है', पहली दुकान को आग लगाई गई।

तोड़ दिया। गाँव के लोगों को यह मालूम था कि इस ट्रक में पंचमहाल जिले के मुसलमान सवार हैं और यह घटना गोधरा कांड वाले दिन ही घटित हुई। तेजगढ़ के ग्रामवासियों ने बिना किसी गुस्से के इसे जाने दिया जो कि अन्य दिन उस परिस्थिति में सही नहीं ठहराया जा सकता था।

दूसरी घटना 28 फरवरी को तेजगढ़ के सबसे पुराने क्षेत्र हरिदासपुर में घटी। हरिदासपुर के सभी 170 घर, जो एक ही जातीय रिश्ते के हैं, उस दिन दोपहर के समय अपने ही किसी संबंधी के दाह-संस्कार हेतु इकट्ठा हुए थे। इस 1200 की संख्या से ज्यादा के जमावड़े में अन्य इलाकों के कुछ चुने हुए पंचायत सदस्यों ने गोधरा घटना के प्रतिशोध की बात की। लोगों ने इसका साथ नहीं दिया,

जबकि इस मौके पर धार्मिक रीति के अनुसार शराब भी परोसी गई थी। तो यह था हिन्दुत्ववाद को समर्थन और वह भी उस दिन जब सारे समाचार पत्रों ने गोधरा घटना को सुर्खियों में छापा था। वहाँ उपस्थित लोगों ने (अपने नाम को छुपाए रखने की शर्त पर) यह बताया कि उकसाने वाले पंचायत सदस्यों ने यह वादा किया कि जो लोग मुसलमानों पर आक्रमण करने का साहस दिखाएँगे उन्हें किरोसिन और शराब मुफ्त दी जाएगी।

दंगाइयों ने 1 मार्च को तेजगढ़ के सरपंच से मुलाकात कर मुसलमान परिवारों को जलाने में भाग लेने की बात की। सुना जाता है कि सरपंच ने पंचायत सीमा के दायरे में किसी भी हिंसा की सख्त मनाही कर दी। ऐसा लगता है गाँव के इन सांप्रदायिक तत्वों ने आगामी 2 और 3 मार्च को सांप्रदायिकता के साथ व्यापार के मुद्दे को जोड़ा जो ज्यादा मान्य था। उन्होंने कहा कि मुस्लिम व्यापारी बहुत घमंडी हो गए हैं और यदि हम जनजातीय लोगों का ही मुहावरा इस्तेमाल करें तो, 'उन पर बहुत चर्बी चढ़ गई है।' उनका यह तर्क काम कर गया और 4 मार्च की शाम, जबकि मुख्यमंत्री मोदी के बेसिर-पैर वाले बयान के अनुसार कि '72 घंटे के अन्दर ही दंगों पर काबू पा लिया गया है', पहली दुकान को आग लगाई गई।

क्या मुसलमानों की सम्पत्ति पर जनजातियों का आक्रमण हिन्दुत्ववाद की विजय है? वह जो कि जनजातीय परम्पराओं से परिचित नहीं है, निश्चय ही इसका उत्तर 'हाँ' में देगें। ऐसा लग सकता है कि जनजातियाँ भाजपा की कट्टर समर्थक बन चुकी हैं परन्तु सच्चाई यह है कि जनजातीय लोग न तो हिंदू हैं और न ही मुसलमान।

यह दुकान 55 वर्षीय याकूब खत्री की थी जो कि बिस्कुट तथा पिपरमिंट की गोलियाँ इत्यादि सामान बेचते थे। याकूब खत्री के पास पाँच एकड़ कृषि भूमि थी और उनके भाई गनीभाई तेजगढ़ की मस्जिद से संबंधित मसलों के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। परन्तु मिठाई-मीट की दुकान याकूब के आर्थिक स्थिति की स्पष्ट तस्वीर नहीं प्रस्तुत करती। उनका एक बहुत बड़ा मकान तथा अन्य दो दुकानें भी हैं जो कुछ दूर पर हैं और वे किराने का सामान, चूड़ियाँ, जूते, छुरी-कांटा-चम्मच इत्यादि सामान बेचते हैं। जाहिर है याकूब खत्री को निशाना बनाकर हिंदू सांप्रदायिक शक्तियों ने धार्मिक प्रतिशोध और व्यापारिक प्रतिस्पर्धा दोनों मुद्दों को मिलाने में सफलता पाई।

आगजनी की इस घटना के समय मुस्लिम समुदाय तेजगढ़ गाँव में था और उसने इस आक्रमण का जवाब भी देने की कोशिश की। लेकिन भीड़ बहुत ज्यादा थी और विरोध माँग अनुरूप नहीं था। फिर घटना स्थल पर पुलिस भी नहीं थी। अगले तीन दिन तक तेजगढ़ के मुसलमान आक्रमण की पुनरावृत्ति से खौफ खाए भागने को तैयार थे। दंगे देर दोपहर शुरू हुए और शाम तक चलते रहे और इस बीच दो और दुकानें जंलकर राख हो गईं। रात को सभी मुसलमान भाग गए। किसी को नहीं मालूम था कि कहाँ शरण लेनी थी। ऐसी भी अफवाहें फैली थीं कि याकूब खत्री की घटना के समय मुसलमानों ने भीड़ पर गोलियाँ चलाई थीं। इसका अर्थ यह था कि मुसलमानों के पास गैरकानूनी हथियार हैं और इस बात को बल देना कि मस्जिदें ऐसे हथियारों का अड्डा हैं।

अगली दुकान 55 वर्षीय कादर भाई की जलाई गई जो एक आटे की चक्की, एक कपड़े की दुकान तथा एक किराने की दुकान के भी मालिक हैं। दिलावर भाई, 40, की कपड़े की दुकान तथा उसी के बगल में जूते तथा छुरी-कांटा इत्यादि की एक और दुकान इन आक्रमणकारियों की अगली शिकार थी। अहमद भाई, 55, का अनाज का व्यापार था तथा एक टेंट हाउस के भी मालिक थे, नासिर भाई जिनका अनाज का व्यापार था, आक्रमणकारियों के अगले लक्ष्य थे।

इस समय सांप्रदायिकता दंगाइयों के दिमाग से लगभग मिट चुकी थी। जिन्होंने दंगों की योजना बनाई थी और इसके लिए पैसे दिए थे, ऐसा लगता है कि अब वे अपनी योजना को पूर्णत: व्यापारी दावपेंच के रूप में देख रहे थे ताकि बाजार की स्पर्धा समाप्त की जा सके और

उसके ऊपर उनका पूर्ण अधिकार हो जाए; और जो लोग इन दंगों में भाग ले रहे थे, ऐसा प्रतीत होता है कि, वे इसे असामान्य लोकं विधि-विधान को लूटने के एक मौके के रूप में देख रहे थे। मैंने पहले ही तेजगढ़ के दंगे के विधिवादी स्वरूप के विषय में इंगित किया है और यहाँ पानवड़ के दंगों ने भी वही रूप अपनाया जो कि उसी समय शुरू हो रहे थे।

ऐसे ही क्षण में वे पाँच अफवाहें, जिनका जिक्र पहले किया गया है, फैलाई गईं क्योंकि अब तक सांप्रदायिक शक्तियों द्वारा बड़ी मेहनत से शुरू किये गए इन दंगों का संवेग आन्तरिक विरोधाभास के फलस्वरूप क्षीण पड़ने लगा था। यह विरोधाभास जनजातियों की व्यापारियों (जो कि अक्सर ही सूदखोर हैं) पर आक्रमण की इच्छा तथा बनियों की मुसलमान व्यापारियों को लक्ष्य बनाने के कारण पैदा हुआ था। हिंदू बनिए, जो कि इन दंगों के पीछे थे, जनजातीय लोगों के दुकानों को लूटने के उत्साह से अब डरने लगे थे क्योंकि उन्हें अपनी दुकानों के ही लुट जाने का खतरा पैदा हो गया था। यही कारण है कि दंगाइयों ने तेजगढ़ में याकूब खत्री की, आगजनी के पहले दौर से बची, दो दुकानों को जला दिया। याकूब के गनी के साथ पारिवारिक संबंधों के मद्देनजर याकूब के ऊपर आक्रमण पूर्णत: तेजगढ़ मस्जिद के ऊपर हमले जैसा ही प्रतीत हो रहा था।

इसके बाद एक वयोवृद्ध मुसलमान जिनको लोग लखपति के नाम से जानते हैं, के ऊपर हमला हुआ। लखपति स्थानीय सूदखारी के धंधे के बेताज बादशाह थे, यद्यपि इधर कुछ वर्षों में उनके धंधे में कुछ गिरावट आई थी। जब सांप्रदायिक उन्माद को भड़काया जा रहा था उस समय दंगाइयों के पास दंगे के शिकार हुए लोगों के आर्थिक विषय में सोचने के लिए समय नहीं था। इसीलिए दर्जी भीखा, गरीब किसान फकीर भाई जिनके पास एक एकड़ से भी कम जमीन है और जेल के अवकाशप्राप्त क्लर्क यूसूफ भाई खत्री के मकान जलाकर राख कर दिये गए।

लेकिन इन दंगाइयों की व्यापारिक रुचि घटी नहीं। दंगाइयों ने मुसलमान व्यापारियों का एक गोदाम जहाँ कि वे अपना सामान रखते थे, जला दिया। मुसलमानों के मकानों में भीड़ ने लूट-पाट की। अन्तिम आक्रमण बशीर खत्री के शीतल पेय तथा कपड़े की दुकान पर हुआ। दंगों के दौरान, जो कि लगभग दो सप्ताह तक चला, पुलिस का तेजगढ़ में होना उनकी कमी की बजाय गफलत का द्योतक था। दंगाइयों के मानस और उनके स्वभाव के ऊपर इससे ज्यादा सुस्पष्ट टिप्पणी और क्या हो सकती है कि 4 मार्च के बाद एक बार भी पंचायत के लोगों या स्थानीय हिंदू बनियों ने इन दंगाइयों को रोकने की कोशिश नहीं की।

शालीनता और सम्मान का एकमात्र कार्य था साबीर भाई का मकान छोड़ना जोकि पंचायत के चुने हुए सदस्य हैं और तेजगढ़ की पंचायत में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तरह तेजगढ़ के लगभग 500 मुसलमानों ने, किसी और द्वारा साबरमती एक्सप्रेस के एस-6 डिब्बे को गोधरा में आग लगाने और उससे भी मुख्य बात की उन्होंने जनजातीय क्षेत्र में हिंदू सूदखोरों के साथ प्रतिस्पर्धा की सजा भुगती। पानवड़ के कुछ दिनों के भयंकर दंगे के दौरान यह बात बराबर सुनाई पड़ती रही कि मुसलमान सूदखोरों को सबक सिखाना है क्योंकि 'इनकी चर्बी बहुत बढ़ गई है।'

यह सोचना पूर्णत: गलत होगा कि जनजातियों ने इन दंगों के दौरान कभी भी हिंदुत्व का समर्थन किया। जमीनी सच्चाइयाँ यह दिखाती हैं कि सत्य इससे बहुत दूर है। जनजातीय गाँव बहुत उकसावे के बाद ही दंगे में शामिल होते थे। उन्हें शामिल होने के लिए डराया-धमकाया जाता था। प्राय: 15 से 20 लोगों का गिरोह ग्राम सरपंच के पास जाता था और मुसलमानों पर आक्रमण करने के लिए ऐसे लोगों की माँग करता था। इस गिरोह के एक दो नेता ही बोलते थे। ये लोग अपने साथ हो लेने वाले लोगों को कानून से सुरक्षा का वचन देते थे और साथ ही इस आमंत्रण को अस्वीकार करने वालों को धमकाते भी थे। चूँकि ये भड़कानेवाले लोग सत्ता पक्ष के लोग थे, अत: इनकी धमकियों और वचनों का विरोध करना मुश्किल भरा था।

पानवड़ के दंगों के दौरान उसी बीच एक नौजवान राठवा-जो एक अफवाह के अनुसार पुजारा हो गया था, उन परिवारों, जिनमें कोई हादसा हो जाता है, को दो लाख रुपए देने का भरोसा दिला रहा था। वह मना कर रहे लोगों

को धमकी भी दे रहा था। इस व्यक्ति के पास न तो इतनी सम्पत्ति है कि वह अपने कहे अनुसार यह मुआवजा दे सके और न ही ऐसा कोई राजनैतिक गठजोड़ है कि लोगों को ऐसी धमकी दे। यह बात ध्यान में रखने की है कि राठवा लोग बहुत कम बोलते हैं और अपने आम बातचीत में इने-गिने शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। वे झूठ नहीं बोलते हैं। पुलिस द्वारा अक्सर कहा जाता है कि यदि कोई राठवा हत्या करता है तो वह स्वयं ही थाने में आकर अपने जुर्म का इकबाल कर लेता है। ऐसा व्यक्ति जब चारों तरफ जाकर रुपयों की पेशकश कर रहा था तो संभवत: खोखले शब्दों का प्रयोग नहीं कर रहा था। निश्चित ही कोई अन्य व्यक्ति इस पैसे की पेशकश में उसके पीछे था और वह उसके कहने पर काम कर रहा था।

हिन्दुत्व का वास्तविक अर्थ है, जैसा कि इसकी वकालत करनेवाले लोग समझते हैं, इस विचार को स्वीकार करना कि भारत मुख्यतया एक हिंदू राष्ट्र है। यह एक धार्मिक दर्शन अथवा कोई सामाजिक सुधार आन्दोलन नहीं है। यह सांस्कृतिक अँध-राष्ट्रवाद पर आधारित एक राजनैतिक दर्शन है जो यह मानने के लिए बाध्य करता है कि भारत में रहनेवाले गैर-हिन्दू अपने आपको 'अल्पसंख्यक' मानें और जिनकी संरक्षण और सुरक्षा इस बात पर निर्भर करेगी कि वे बहुसंख्यक वर्ग का कितना विश्वास प्राप्त करने में सक्षम हैं। यह ऐसी विचारधारा नहीं है जो हिन्दुओं को हिन्दूमतवादी बनने के लिए कहती है; बल्कि यह भारत के मुसलमान तथा ईसाईयों से मुस्लिम तथा ईसाई मतवादी होने से मना करती है।

कुल मिलाकर इस तरह यह कहा जा सकता है कि जनजातीय दंगे सूदखोरों द्वारा कराए गए थे, भले ही इस सच्चाई के संवैधानिक प्रमाण आने में देर लगे। राज्य द्वारा इस मसले पर की गई कोई भी कबायत दिखावा मात्र ही होगी और जिसके परिणाम स्वरूप गरीब दंगाइयों की बहुत बड़ी संख्या के ऊपर इस आधार पर मुकदमा चलाया जाएगा कि उनके घरों से चुराए हुए अनाज, कपड़े और बर्तन इत्यादि मिले हैं।

पंचमहाल के साहूकारों ने 19वीं शताब्दी में अपने हितों की रक्षा हेतु जनजातीय आंदोलन खड़ा किया था ताकि राजस्थान के सिरोही जिले में उनके नमक व्यापार के अधिकार की रक्षा हो सके। इस विषय पर बहुत अच्छे अध्ययन उपलब्ध हैं। इन अध्ययनों के बदौलत हम यह विश्वास के साथ कह सकते हैं कि पश्चिमी भारत की जनजातियाँ शताब्दियों से सूदखोरों के जूए के तले पिस रही हैं। आपातकालीन परिस्थितियों के चलते जब कभी ज्यादा रुपयों की जरूरत पड़ जाती तो जनजातीय लोग अपने आप को असमर्थ पाते थे। धीरे-धीरे उनकी माली हालत खराब होती गई; विशेष तौर पर उस समय से जबसे जनजातियों का जंगलों पर से एकाधिकार समाप्त हुआ और उन्हें रकबे के तौर पर जमीन का टुकड़ा दिया गया। जो जमीन उन्हें खेती के लिए दी गई वह आनेवाली पीढ़ियों में बंटती गई, भले ही जमीन के कागजातों में ऐसा न हो। बरसात पर आधारित खेती से जनजातीय खेतिहर जीविकोपार्जन भर ही कमा पाता है और एक साल का सूखा भी उसे कर्जदारी की ओर ले जाता है।

जनजातीय क्षेत्रों की बैंक व्यवस्था शर्मनाक तरीके से जनजातियों के विरुद्ध है। अव्वल तो इन बैंकों की शाखाएँ भौगोलिक दृष्टि से ऐसी जगहों पर नहीं हैं जहाँ ये लोग आसानी से पहुँच सकें। जहाँ ये शाखाएँ हैं भी वे, अपने प्रांतीय दफ्तरों तथा नाबार्ड जैसी संस्थाओं के दिशा निर्देशों के बावजूद अपनी कार्य प्रणाली में जनजातियों के प्रति अच्छे भाव नहीं रखतीं। वह जनजातीय व्यक्ति खुशनसीब होगा जिसके साथ बैंक मैनेजर ठीक से बातचीत कर ले। अन्यथा बैंक के अंदर घुसने वाला जनजातीय व्यक्ति अपमानित ही किया जाता है।

फिर, बैंकों के साथ कोई भी समझौता करने के लिए जितनी कागजी कार्यवाई करनी पड़ती है, वह जनजातियों की शक्ति के परे है। इसके विपरीत एक निजी सूदखोर कोई दस्तावेज नहीं माँगता। वह प्रत्येक व्यक्ति को, जो कि

उसके यहाँ ग्राहक के रूप में आता है, नाम से जानता है। उसकी रुपए वापस देने की शर्तें भी काफी आसान और परिवर्तनशील होती हैं जिससे कि सूखा पड़ने से उत्पन्न स्थिति में बकाया राशि देने की शर्तों में जरूरी परिवर्तन किए जा सकते हैं। इस दयाभाव के बदले में सूदखोर ऊँची ब्याज दरें लेता है। ये दरें पाँच रुपए से 12 रुपए प्रतिमाह यानी 60 से 144 प्रतिशत प्रतिवर्ष होती हैं। पहले तीन महीने का सूद मूलधन से काटकर ही बाकी राशि दी जाती है। इसका मतलब कि अगर एक व्यक्ति 100 रुपये उधार पर लेता है, तो 120 प्रतिशत दर ब्याज पर उसे 70 रुपये हाथ में मिलेंगे।

उधार का भुगतान रुपयों में करना जरूरी नहीं है। सूदखोर अनाज, जंगल उत्पाद अथवा लकड़ी भी रुपयों के एवज में स्वीकार करता है और उसकी दर स्थानीय बाजार में उस समय लागू दरों के अनुसार होती है; यदि अनाज इतना नहीं होता है कि उधार का भुगतान ब्याज के साथ किया जा सके तो उधार लेने वाला दूसरे सूदखोर के पास जाता है ताकि वह पहला उधार पूरा-का-पूरा चुकता कर सके। दो शताब्दियों की इस सूद पर रुपए चढ़ाने की प्रथा ने सूदखोरों को हमारी सोच से बहुत ज्यादा धनी और जनजातियों को इतना कर्जदार बना दिया है जिससे कि उनका उबर पाना नामुमकिन है।

सूद पर रुपए चढ़ाने वाले लोग बड़े-गाँवों जैसे तेजगढ़ या पानवड़ या फिर ऐसे कस्बों में जहाँ साप्ताहिक बाजार लगते हैं, में रहते हैं। जनजातीय किसान प्रति सप्ताह इन बाजारों में जाते हैं और इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि इन सूदखोरों को सलाम करें। उनकी सोच है कि ऐसा करने से उन्हें रुपया उधार मिलने में आसानी होगी।

राजनेता भी अपनी राजनीतिक सफलता के लिए इन सूदखोरों पर निर्भर हैं क्योंकि इन इलाकों के वोटों पर इन साहूकारों का कब्जा है। अतः राजनेताओं द्वारा सूदखोर के विचारों तथा स्वार्थों की अनदेखी करना संभव नहीं है। जब कभी इन जनजातियों के लोग अपने लिए सुरक्षित क्षेत्रों से चुनकर आते हैं, उनके लिए ऐसी विकास-गतिविधियों का चलाना अत्यन्त मुश्किल है जो इन सूदखोरों के हितों को नुकसान पहुँचाती हों। यही कारण है कि जनजातीय क्षेत्रों में दिखाई पड़ने वाले विकास के अनेक कार्यक्रम दिखावा मात्र हैं। उनकी आर्थिक शक्ति बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को जानबूझ कर पीछे धकेल दिया जाता है।

कमजोर आधारित संरचना, रुपयों की लगातार कमी, सर्वविद्यमान बेरोजगारी, असाक्षरता तथा तकनीकी पिछड़ापन जहाँ विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास के प्रतिकूल है पर यही न्यूनतम जरूरी शर्तें हैं जिनके बल पर निजी सूदखोर क्षेत्र का विकास होता है। ऐसा हो सकता है कि विभिन्न जिलों में इस स्थिति में कुछ फर्क हो पर जनजातियों का अविकसित होना तथा लगातार कर्जे में होना लगभग एक जैसा ही है।

जनजातियों द्वारा पुलिस के विरुद्ध दंगे के दौरान तीर-कमान और गन का इस्तेमाल पूरी तौर से व्याख्यायित नहीं किया गया है कि उनकी सूदखोरों पर कर्जदारी ही उन्हें मजबूर करती है या सूदखोरों द्वारा उन्हें मजबूर किया जाता है कि वे मुसलमान प्रतिस्पर्धियों को खत्म करें। हाँ, राठवा जनजाति की भीड़ -युयुत्सा की जड़े कहीं और हैं। उन्हें व्याख्यायित करने के लिए हमें पानवड़ के समाजशास्त्र को और नजदीक से देखना पड़ेगा और साथ ही उनके समाजों की आधुनिकता के साथ टकराव से जो असंतोष फैल रहा है, उसे भी समझना होगा।

बड़ौदा जिले के जनजातीय कस्बों में पानवड़ मध्यप्रदेश के सबसे नजदीक हैं। भील, जो कि अभिप्रायात्मक सीमा के दूसरी तरफ रहते हैं और राठवों से भाषा तथा रीति-रिवाजों में अलग नहीं हैं, को एक समय ब्रिटिश सरकार के 'अपराधी जनजाति अधिनियम 1871' के तहत अधिसूचित किया गया था। इसका कारण था कि भीलों ने पहले इन्दौर और धार के मराठाओं के लिए मौसमी सिपाहियों की तरह काम किया था। परन्तु 1952 में उनकी अनधिसूचना के बाद उनके पास जीवन जीने के कोई मौके उपलब्ध नहीं थे। अतः वे यदा-कदा अपराध की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर थे। भीलों की अनधिसूचना के परिणामस्वरूप सीमा के उस पार से होनेवाले संभावित खतरों से बचने के लिए पानवड़ के आसपास के गाँव वालों ने छोटी पहाड़ियों पर बड़े स्तर पर जंगलों की कटाई शुरू कर दी, ताकि सुरक्षा की दृष्टि से सीमा पार दूर तक दिखाई पड़े। छोटा उदेपुर के लकड़ी के व्यापारियों ने, जिनका 1960 में जंगल कामगार संघ पर नियंत्रण था, इस इलाके के जंगल कटाई

को बढ़ावा दिया।

जंगल कटाई के परिणामस्वरूप पर्यावरण के जो खतरे होते हैं वे सभी पानवड़ क्षेत्र में आ चुके हैं। कृषि से प्राप्त आमदनी इस क्षेत्र में जिले के किसी भी अन्य जनजातीय क्षेत्र की कृषि आमदनी से कम है। रास्ते की तलाश में पानवड़ की जनजातियाँ साक्षरता और शिक्षा की तरफ बढ़ी हैं। परन्तु उच्च शिक्षण संस्थाओं के नजदीक न होने से ये युवा वर्ग हाई-स्कूल तक की ही शिक्षा प्राप्त कर पा रहे हैं और उनके पास कोई रोजगार भी नहीं है। इनमें से कई सूरत तथा अन्य स्थानों पर जाकर हीरे की कटाई का काम करते हैं या कच्छ जाकर निर्माण अथवा कृषि मजदूर बन जाते हैं। कई वर्षों तक 'गुजरात खनिज विकास निगम' की निकट ही कादीपानी में चल रही परियोजनाओं ने उन्हें रोजगार मुहैया कराया। परन्तु कुछ वर्ष पहले यह परियोजना कानूनी और प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण खटाई में पड़ गई। तब से यहाँ के जनजातीय युवक मादक दवाइयों और छोटे-मोटे हथियारों की खरीद-फरोख्त में लग गए हैं। इन हथियारों को मध्य प्रदेश से खरीदकर बड़ौदा ले जाते हैं जहाँ इनकी खरीद के लिए ग्राहक मिलते हैं। इस तरह आसान आमदनी करने वाले आगे चलकर छोटे-मोटे सूदखोर हो जाते हैं और हिंदू नाम तथा रहन-सहन भी अपना लेते हैं। वही लोग विभिन्न पंथीय आंदोलनों का स्वागत करते हैं। हिंदुओं में नये आये हुए ये लोग इस क्षेत्र में हिंदुत्ववाद के विशेष क्षेत्र हैं।

ईरान तथा उन दिनों के अफगानिस्तान के इस्लाम के मूलवादियों और हिन्दुत्ववादियों के बीच एक भारी फर्क है। इस्लाम मूलवादियों को राष्ट्र अथवा संख्या से कोई लेना-देना नहीं है। वे यह चाहते हैं कि सभी मुसलमान इस्लाम के सिद्धांतों का निष्ठापूर्वक पालन करें। हिन्दुत्व विचारधारा मुख्यतया राष्ट्र के विचार पर आधारित है और यह एक मजबूत राजनैतिक बहुसंख्यक विचारधारा के इर्द-गिर्द घूमती है। इस्लामिक मूलवाद धार्मिक उग्रवाद है। हिन्दुत्ववाद राष्ट्रवादी शुद्धतावाद है। पहला इस्लाम के उदारीकरण को रोकने के लिए आन्तरिक दमन करता है; दूसरा इर्द-गिर्द के समुदायों और मतों के माननेवालों के बीच आतंक पैदा करता है ताकि ये अपनी पहचान का दावा पेश न करें।

1999 में 'अल्प-जमा योजना' (Micro Credit Scheme) प्रारम्भ की गई। हम लोगों ने पानवड़ के इर्द-गिर्द गाँवों में भी स्वयंसेवी समूह बनाया। ये समूह थे कनवाड़-2, चिमली-1, डूंगरगाँव-2, सिहादा-17, झंझरझोल-7, पानवड़-9, मोघालिया-4, रंगपुर-1, झंका-1, कावरा-14, गाँठिया-4 तथा गाभड़िया-4 । तीन साल के सूखे के कारण अन्य गाँव के स्वयंसेवी समूह को बैंक के छोटे कर्जों को भी वापस करने में कठिनाई हो रही थी, पर ये स्वयंसेवी समूह एकाएक रुपयों की गड्डी ले आते और अनेक समूहों का कर्जा एक ही दिन में दे देते। मैं यह देखकर आश्चर्य चकित था कि कर्ज वापस करने के लिए जो नोट ले आते थे वे क्रमिक रूप से लगे होते थे। स्पष्टतः ये गरीब जनजातियों से एकत्रित रुपयों की तरह नहीं होते थे जो कि अन्य गाँवों के 'स्वयं सेवी समूहों' के द्वारा एकत्रित किये जाते थे; जो अकसर ही पुराने और मुड़े-तुड़े नोट होते थे, जैसा कि आम मजदूर अपने विपत्ति काल के लिए रखता है। इससे स्पष्ट था कि यह रुपया बैंक से निकाला हुआ था।

'स्वयं सेवी समूहों' के सदस्यों के पास सिद्धांततः सिवाय उस खाते के जिसे हम चलाने में मदद कर रहे थे, और कोई बैंक खाता नहीं होता। पुनरावलोकन के बाद अब मैं कह सकता हूँ कि ये रुपए उन्हें कर्ज के रूप में सूदखोरों से मिलते थे जो कि इन समूहों के नेताओं को अल्प जमा योजनाओं को रोकने के लिए दिए गए थे। पानवड़ के जनजातीय लोग बैंक के 12 प्रतिशत ब्याज दर की जगह 120 प्रतिशत ब्याजदर पर जाने के लिए तैयार थे। यहाँ के नौजवान, नव-हिन्दू, अर्द्धशिक्षित बेरोजगार तथा अविवेकी पीढ़ी के लिए हिन्दू सूदखोर एक आदर्श बन गया है तथा नशीली दवाइयाँ तथा गैर लाइसेंसी बन्दूकें उनका जीवन बन गई हैं।

हिंसा का मूल स्रोत मस्तिष्क है न कि वह हथियार जो उस व्यक्ति के पास होता है। जनजातीय दिमागी सोच सामन्ती नहीं है परन्तु निश्चित ही मध्यकालीन है। यह सामन्ती नहीं है क्योंकि जनजातियों की राज्य की रचना अभिवृत्ति में जाति समूह राज्य को प्रतिस्थापित कर देता है और मुख्यतया यही कारण है कि अपनी जाति की शुद्धता और स्वतन्त्रता को बरकरार रखने के लिए जनजातीय लोगों का औरतों के प्रति रवैया बाह्य शक्तियों से औरतों को दूषित होने से बचाने की तरफ केन्द्रित रहता है। अक्सर ही जब एक जनजातीय स्त्री अपने जनजातीय कुल से बाहर विवाह करने की इच्छा प्रकट करती है तो खून-खराबा होता है। लड़कियों को अपने परिवार और संगे-संबधियों के किसी डर-भय के बिना अपने कुल में जीवन साथी चुनने की पूरी आजादी होती है। परन्तु अपने कुल से बाहर के किसी व्यक्ति से शादी करने की ऐसी कोई आजादी प्राप्त नहीं होती है। यद्यपि ये रीति-रिवाज, तेजी से बदलते हुए आर्थिक परिप्रेक्ष्य में लगातार तनाव में आ रहे हैं।

पानवड़-छोटा उदेपुर के उत्तर के क्षेत्र यानी पंचमहाल क्षेत्र में औरतों की सामाजिक स्थिति में भारी स्तर पर परिवर्तन आया है। जनजातियों में दूल्हा-दुल्हन के पिता को दहेज देता है। जनजातियों में दुल्हन का दाम ज्यादातर मामूली अथवा अभिप्रायात्मक होता है। परन्तु कर्ज में डूबे हुए पंचमहाल की जनजातियों में दुल्हन की कीमत को एक वैकल्पिक आमदनी के रूप में देखा जाने लगा है। हाल के वर्षों में यह बढ़कर 60 हजार तक पहुँच गया है जबकि पहले यह एक या दो हजार हुआ करता था। इसका नतीजा है कि शादी के तुरन्त बाद दूल्हा, दुल्हन को लेकर अमहदाबाद या वड़ोदरा जैसे शहरों में चला जाता है जहाँ दोनों मजदूर हो जाते हैं ताकि वे कमाई कर संबंधियों और सूदखोरों से लिये हुए इस कर्जे का भुगतान कर सकें जो कि आनेवाले कई वर्षों तक चलता रहता है।

प्रवासी मजदूर औरतों की शहरों में दयनीय स्थिति है और उन्हें मजदूरों के ठेकेदारों और शहरवासियों द्वारा यौन शोषण का सामना करना पड़ता है। अब पंचमहाल की जनजातियों को उनकी लड़कियों के खरीददारी के लिए हिंदुओं से बड़े-बड़े लुभावने प्रस्ताव मिलने लगे हैं। पानवड़ के जनजातीय लोग भी इन परिवर्तनों से परिचित हैं। पानवड़ के पूर्व में मध्य प्रदेश है जहाँ की जनजातीय औरतों ने पंचमहाल से भी ज्यादा अपमान सहा है। बेदिया और कंजर जैसी विमुक्त जातियाँ ऐसी स्थिति में पहुँच गई हैं कि उन्हें लड़कियों को वेश्यावृत्ति में भेजना सहज लगता है।

पानवड़ क्षेत्र में जनजातीय स्त्री के स्त्रीत्व के भंग होने के डर ने जनजातीय मानसिकता को जकड़ लिया है। पुलिस आँकड़ों के अनुसार, 1990 और 2000 ई., के बीच की हत्याएँ यह दर्शाती हैं कि सबसे ज्यादा हत्याएँ इस भय से हुई कि औरतों को कहीं ले जाया जा रहा है। अतः यह आश्चर्य ही होता कि, जब यह अफवाह फैली कि लगभग 50 औरतों को मुसलमानों द्वारा यौन शोषण के लिए ले जाया जा रहा है तो इतनी हिंसक प्रतिक्रिया नहीं होती। जिन लोगों ने इस हत्याकांड की योजना बनाई उन्होंने इस अफवाह का तेजगढ़ में उपयोग नहीं किया और यही कारण है कि पानवड़ की हिंसा का स्तर तेजगढ़ से कहीं ऊँचा था।

यद्यपि तेजगढ़ और पानवड़ के गाँव धीरे-धीरे सामान्य हो रहे हैं। लेकिन वे बहरा कर देनेवाली चीख को शायद ही भूल पाएँ जो उन्होंने मार्च, 2002 में सुनी थी। गुजरात के दंगों के समय की इन चीखों में करुणा और आतंक का विचित्र सम्मिश्रण था जिसमें देवत्व का जरा सा भी अंश नहीं था। यह दुःखद है कि इन दंगों के दौरान गुजरात की जनजातियों को आवाज तो मिली पर किसी आदर्श के लिए नहीं और न ही अपने घर और चूल्हा-चौका के सुधार के लिए अपितु राज्य द्वारा समर्थित हत्याकांड में दूसरे समुदाय को ध्वस्त करने के लिए।

जो लोग गुजरात के जनजातियों में हिंसा के आकस्मिक बढ़ोतरी को समझना चाहते हैं उन्हें यह जानना उपयोगी होगा कि मार्च 2002 की हिंसाओं के बाद के छः हफ्तों के अन्दर ही तेजगढ़ के एक छोटे से हिस्से हरिदासपुर में,

जिसकी आबादी लगभग 1200 है, निम्नलिखित आकस्मिक मौतें हुईं:- (i) मनसुख भाई दलसुख भाई, 55 वर्ष; (ii) चिक्खा भाई दलसुख भाई, 45 वर्ष; (iii) कंचनभाई छगन भाई 40 वर्ष; (iv) कामरी बेन तेर सिंह भाई, 40 वर्ष; (v) मानियाभाई रूपला भाई, 40 वर्ष; (vi) सिंगली बेन नाथिया भाई, 55 वर्ष; (vii) सांसूभाई सोर्याभाई, 13 वर्ष।

इसके अतिरिक्त दो और बच्चों, उम्र 10 वर्ष और एक वर्ष, की भी मौत हुई जिनके नाम मेरे आँकड़ें में नहीं है। ये सारी मौतें 'सिकल सेल' नामक बीमारी से नहीं हुई थीं। 'सिकल सेल' के बीमार का जीवनकाल 10 से 25 वर्ष का होता है। अत: इनमें से अनेक मौतों का कारण कुपोषण अथवा चिकित्सकीय उपेक्षा है। कोई भी सरकार इस बात को स्वीकार नहीं करेगी कि इतने सारे गरीब लोग खाने की कमी से मर गए।

यदि जनसंख्या का भारी हिस्सा गरीबी, भूख और शोषण के हाथों अपने आपको बचाने के लिए छोड़ दिया जाए और यदि उनकी अर्द्धसाक्षरता और बेरोजगारी समाज के मूल्यों के साथ कठोर विरोधाभास में आ जाए और समाज के नये आदर्श आसानी से पैसा बनाने पर आधारित हों तो यह संभव है कि अतार्किक लड़ाकू प्रवृत्तियों के जन्म लेने के लिए जगह बनेगी। पानवड़ इसका अपवाद नहीं हो सकता था।

फिर भी यह विश्वास करना लक्ष्य से बहुत दूर होगा कि छोटा उदेपुर और बड़ौदा के कवॉट तालुका ने इन मार्च 2002 के दंगों से पहले किसी भी समय तेजगढ़ और पानवड़ के बाजारों में हथियारों से आक्रमण की कोई योजना बनाई हो या कोई स्थानीय नेतृत्व अथवा राजनैतिक आदर्श उनके पास रहा हो जिसमें कि हिंसा समाज परिवर्तन का एक साधन हो।

13 मार्च को जिला मजिस्ट्रेट भाग्येश झा तथा सीनियर डी.एस.पी. केशव कुमार के ऊपर देशी राइफल से उस समय गोली चलाई गई जब वे क्षेत्र के दौरे पर थे; और इस घटना पर 20 मार्च को 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाता साजिद शेख ने एक रपट लिखी जिसका शीर्षक था 'जनजातियों ने पुलिस के सामने गुरिल्ला रणनीति अपनायी।'

क्या मुसलमानों की सम्पत्ति पर-जनजातियों का आक्रमण हिन्दुत्ववाद की विजय है? वह जो कि जनजातीय परम्पराओं से परिचित नहीं है, निश्चय ही इसका उत्तर 'हाँ' में देगा। ऐसा लग सकता है कि जनजातियाँ भाजपा की कट्टर समर्थक बन चुकी हैं परन्तु सच्चाई यह है कि जनजातीय लोग न तो हिंदू हैं और न ही मुसलमान। भारतवर्ष में दो तरह के समुदाय हैं–वे जो जाति और धर्म के अनुरूप आचरण करते हैं और दूसरे जो कि ऐसा नहीं करते। अत: कोई भी व्यक्ति या तो धर्म को मानता है और एक जाति का सदस्य होता है अथवा वह जनजाति है। चूँकि अब सरकारी कागजों में यह लिखना आवश्यक हो गया है कि वह व्यक्ति जनजाति-हिंदू, जनजाति-मुस्लिम या जनजाति-ईसाई है, ज्यादातर जनजातीय लोग यह विश्वास करने लगे हैं कि वे हिंदू, मुस्लिम या ईसाई हैं।

परन्तु जब जनजातीय व्यक्ति अपने आप को हिंदू कहता है तो क्या कोई हिंदू अपने आप को जनजाति कहेगा? यद्यपि जनजातीय व्यक्ति की सोच में जनजाति या हिंदू परस्पर अलग सामाजिक श्रेणियाँ नहीं हैं। परन्तु हिंदू के दृष्टिकोण में वे हैं। भारत का पिछले पचास वर्ष का राजनैतिक कथन ही, जो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति को एक ही सांस में बोलता है, जनजातियों की बदलती आम पहचान के लिए जिम्मेदार हैं।

यदि कोई इन जनजातियों के धार्मिक रीति-रिवाजों, आध्यात्मिक सोच एवं उनके विश्वास प्रणाली को देखे तो वह पाएगा कि हिंदुओं के साथ कई साम्यताओं के बावजूद वे काफी भिन्न हैं। मिसाल के तौर पर जनजातियों में योग, सन्यास, वर्ण एवं आश्रम जैसी व्यवस्थाएँ नहीं हैं। कई जनजातियाँ जरूर कुछ हिंदू देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा करती हैं, पर कोई भी जनजाति हिंदुओं के सभी देवी-देवताओं को उसी रूप में स्वीकार नहीं करती। जनजातियों के देवताओं एवं दैत्यों के मिथक हिंदू मिथकों से काफी भिन्न होते हैं। जनजातीय रामायण और महाभारत महाकाव्य भी अपनी पृष्ठभूमि तथा अर्थ दोनों में ही हिंदू विवरण से भिन्न हैं। जनजातियों की पुरोहिती व्यवस्था भी हिंदुओं से काफी भिन्न है।

दरअसल एक जनजाति अपने जाति समूह से सम्बद्ध होती है। अत: वह जाति व्यवस्था जो कि किसी परिवार

में जन्म लेने के ऊपर आधारित होती है, को एक सामाजिक संस्था के रूप में विकसित नहीं कर सकती। किसी भी जनजाति के अन्दर सभी लोग एक ही जाति के होते हैं। अत: उनमें कोई सामाजिक श्रेणीबद्धता नहीं होती, जैसे कि हिंदू समाज विभिन्न जाति श्रेणियों में विभाजित है। यही कारण है कि हमारे देश में जब प्रतिकूल तथा अलाभकर स्थितियों में रहनेवालों की सूची बनने लगी तो अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को अलग-अलग सूचियों में रखा गया।

औपनिवेशिक राज्य के शुरुआती दौर में सभी समूहों को जनजाति ही कहा जाता था। यही कारण है कि भारत में आनेवाले पुर्तगाली यायावर 'जनजाति' और 'जाति' को बड़ी सहजता से एक दूसरे के लिए इस्तेमाल करते थे। लेकिन लार्ड डल्हौजी के समय तक आते-आते ब्रिटिश सरकार को यह स्पष्ट हो गया था कि जनजातियाँ और जातियाँ दोनों राज्य के मसले पर अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करती हैं। जातियाँ राज्य की धारणा को स्वीकार करने के लिए तैयार थीं पर जनजातियाँ नहीं। अत: सरकारी तौर पर औपनिवेशिक शासन द्वारा दो अलग सूचियाँ बनाई गईं। एक 'अपराधी जनजातियों' के लिए 1871 में तथा दूसरी 'जनजातियों' के लिए 1872 में। उत्तर औपनिवेशिक काल में जनजातियों की सूची को एक उपयोगी सामाजिक तंत्र के रूप में स्वीकार किया गया। जब कि कानूनी तौर पर भेदभाव की गयी-'अपराधी जनजातियों' को विमुक्त कर उन्हें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य पिछड़ी जातियों में बाँट दिया गया।

यह जानने के बाद कि जनजातियों का अपना अलग एक अतीत है, सांस्कृतिक परम्परा है, राज्य के प्रति एक रवैया है और उनकी अपनी आध्यात्मिक सोच है, उनकी पहचान हिंदू, मुस्लिम या ईसाई के रूप में करना बड़ा ही कठिन मुद्दा है, बजाय इसके कि एक हिंदू की पहचान हिंदू के रूप में की जाए, जिसकी अपनी समस्याएँ हैं। अत: यह कहना कि जनजातियाँ ईसाई या मुस्लिम नहीं हैं तो हिंदू हैं, इसका खींच-खांच कर यही अर्थ लगाया जा सकता है कि इस विशाल और अनियत रूपी सांस्कृतिक महासंघ वाले उपमहाद्वीप सभ्यता में जनजातीय समूह भी उपस्थित हैं, हालांकि वह जाति व्यवस्था के सबसे दूर हाशिए पर हैं और ज्यादातर उसके बाहर।

यहाँ यह पूछना प्रासंगिक होगा कि जनजाति व्यक्ति कोई भी हिंदुत्व की तरफ क्यों आकर्षित होगा यदि वह स्वेच्छा से हिन्दू-जाति व्यवस्था में आना स्वीकार न कर लिया हो, जबकि वह इस व्यवस्था में सबसे निचली श्रेणी में ही होगा। इस उलझने वाले सवाल का जवाब देने से पहले यह जानना जरूरी होगा कि हिन्दुत्व का अर्थ हिन्दू होना नहीं है और न ही हिन्दुत्व के प्रस्तावक इसका यह अर्थ लगाते हैं। दूसरे शब्दों में एक हिन्दू के लिए हिन्दुत्व वही नहीं है जो एक ईसाई के लिए ईसाइयत।

हिन्दुत्व का वास्तविक अर्थ है, जैसा कि इसकी वकालत करनेवाले लोग समझते हैं, इस विचार को स्वीकार करना कि भारत मुख्यतया एक हिंदू राष्ट्र है। यह एक धार्मिक दर्शन अथवा कोई सामाजिक सुधार आन्दोलन नहीं है। यह सांस्कृतिक अँध-राष्ट्रवाद पर आधारित एक राजनैतिक दर्शन है जो यह मानने के लिए बाध्य करता है कि भारत में रहनेवाले गैर-हिन्दू अपने आपको 'अल्पसंख्यक' मानें और जिनकी संरक्षण और सुरक्षा इस बात पर निर्भर करेगी कि वे बहुसंख्यक वर्ग का कितना विश्वास प्राप्त करने में सक्षम हैं। यह ऐसी विचारधारा नहीं है जो हिन्दुओं को हिन्दूमतवादी बनने के लिए कहती है; बल्कि यह भारत के मुसलमान तथा ईसाईयों से मुस्लिम तथा ईसाई मतवादी होने से मना करती है।

हिन्दुत्व विचारधारा का केंद्र बिन्दु इस मत पर आधारित है कि बहुसंख्यक के भले को अल्पसंख्यकों के भले के रूप में देखा जाना चाहिए और यह कि अल्पसंख्यकों के अधिकार की बात करना मुख्यतया बहुसंख्यक के राजनैतिक अधिकार को एक खतरा और चुनौती है। अत: ऐसे अल्पसंख्यक, हिन्दुत्व की वकालत करनेवालों की नजर में, राष्ट्रविरोधी तथा समाजविरोधी हैं। साथ ही अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी संख्या में वृद्धि का कोई भी कदम हिन्दुत्ववादियों की नजर में एक आक्रमण होता है। अत: ईसाई धर्म स्वीकार करना या किसी हिन्दू लड़की का किसी मुसलमान या ईसाई के साथ विवाह करना एक अवांछनीय तथा भड़काने वाला कदम समझा जाता है।

ईरान तथा उन दिनों के अफगानिस्तान के इस्लाम के मूलवादियों और हिन्दुत्ववादियों के बीच एक भारी फर्क है।

इस्लाम मूलवादियों को राष्ट्र अथवा संख्या से कोई लेना-देना नहीं है। वे यह चाहते हैं कि सभी मुसलमान इस्लाम के सिद्धांतों का निष्ठापूर्वक पालन करें। हिन्दुत्व विचारधारा मुख्यतया राष्ट्र के विचार पर आधारित है और यह एक मजबूत राजनैतिक बहुसंख्यक विचारधारा के इर्द-गिर्द घूमती है। इस्लामिक मूलवाद धार्मिक उग्रवाद है। हिन्दुत्ववाद राष्ट्रवादी शुद्धतावाद है। पहला इस्लाम के उदारीकरण को रोकने के लिए आन्तरिक दमन करता है; दूसरा इर्द-गिर्द के समुदायों और मतों के माननेवालों के बीच आतंक पैदा करता है ताकि ये अपनी पहचान का दावा पेश न करें। इन विरोधाभासों के बावजूद ये दोनों विचारधाराएँ सांस्कृतिक विविधता में गहरा अविश्वास दिखाती है।

गुजरात के दंगों के थम जाने के बहुत बाद और जनजातीय दंगों के काबू होने के बाद जब ये लोग अपने खेतिहर कार्यों या शहरों में मजदूरी के कामों पर वापस लौटेंगे और भारतीय मीडिया रुख बदलकर षड्यंत्रों और अन्य सामाजिक दुर्घटनाओं की तरफ मुड़ेगा, उसके भी बहुत बाद तक हिंसा की समस्या हम लोगों के साथ रहेगी। दंगों को दबाना और किसी भी हिंसक घटना पर सरकारें या राजनीतिक पार्टियाँ बदलकर हल निकालने की कोशिश थोड़े समय के लिए ही सफल हो सकती है। किसी भी समस्या का दूरगामी समाधान निकालने के लिए समस्या की जड़ तक पहुँचना पड़ता है और यह काम प्रत्येक व्यक्ति द्वारा हर जगह, हर दिन किया जाएगा।

हिन्दुत्ववादियों का यह स्वप्न है कि एक दिन भारत हिन्दू राष्ट्र बन जाएगा। अत: जनजातीय लोग, जो कि हिन्दू नहीं हैं, उनके मन में हिन्दुत्व के प्रति कोई उत्साह होना जरूरी नहीं है। फिर ऐसा क्यों है कि मार्च 2002 के दंगों में जनजातियों ने मुसलमानों के प्रति ऐसी निर्दयता बरती? यद्यपि मार्च 2002 की घटना ऐसा दिखा सकती है कि सचमुच जनजातियों ने गोधरा हत्याकांड के खिलाफ गुजरात के हिन्दुओं का साथ देंने का फैसला किया। पर ऐसे नतीजे पर पहुँचने से पहले यह याद रखना आवश्यक होगा कि जनजातियों के लोगों को भारत के मध्यकालीन इतिहास की कोई जानकारी नहीं है।

जनजातीय लोग यह नहीं जानते कि बाबर कौन था और यह भी नहीं जानते कि बाबर और उसके उत्तरा-धिकारियों ने शायद हिन्दू मंदिरों को तोड़कर उसी जगह मजिस्दों का निर्माण कराया हो। उन्हें सावरकर या हेडगेवार के बारे में भी कोई जानकारी नहीं है। वे यह नहीं जानते कि आर.एस.एस. क्या चाहती है। उनमें से कोई स्वेच्छा से रामसेवक नहीं बना और न ही कोई अयोध्या गया। उन्होंने शाहबानों मुकदमा और जामा मस्जिद के इमाम के बारे में भी कभी नहीं सुना है। जनजातियों के लिए इस्लाम का वही चेहरा देखा-जाना है जो कि उनके समक्ष स्थानीय सूदखोर के रूप में उपस्थित है, हिन्दुत्व आंदोलन के उसी चेहरे की उन्हें जानकारी है जो कि भाजपा के रूप में पंचायत और विधानसभा चुनावों के दौरान उनके सामने प्रस्तुत होते हैं। यद्यपि यह सच है कि जनजातीय लोग अपने आप को मुसलमानों से ज्यादा हिन्दुओं के नजदीक पाते हैं परन्तु यह उससे भी बड़ा सत्य है कि उनके लगाव पूर्णतया स्थानीय मुद्दों और राजनीति से निर्धारित होते हैं।

कांग्रेस नेतृत्व को जनजातियों की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों की अत्यन्त सीमित जानकारी के बारे में अच्छी तरह मालूम था। कांग्रेस ने जनजातीय क्षेत्रों के अपने शासनकाल में इस बात का विशेष ध्यान दिया कि उन्हें शिक्षित और संवेदनशील न बनाया जाए, उन्हें मात्र वोट बैंक की तरह रखा जाए और ऐसा तभी संभव था जबकि वे गरीब और पिछड़े रहें। कांग्रेस के पूरे चार दशकों के शासनकाल में वे लगातार इस बात को जनजातियों के दिलों में बैठाते रहे कि वे पिछड़े हुए हैं। इस तरह जनजातियो में यह विश्वास घर कर गया है कि उनका पिछड़ापन स्वयं सिद्ध हकीकत है। आज जबकि कोई भी जनजाति व्यक्ति यह कहता है कि हम पछाट हैं तो उसके मन में कोई सवाल नहीं होता और उसे अपनी इस हालात के बारे में

शंकाएँ भी नहीं होती। कांग्रेस को यह अच्छी तरह मालूम था कि यदि जनजातियों को गरीब रखा गया तो उनका राजनीतिकरण नहीं होगा।

भाजपा नहीं जानती कि जनजातियों की गरीबी कैसे दूर की जाए। इससे यह तात्पर्य नहीं कि भाजपा को जनजातियों के आर्थिक विकास में कोई खास रुचि है अपितु ये भी जनजातियों को एक बड़े वोट बैंक के रूप में ही देखते हैं। संघ परिवार को जनजातीय क्षेत्रों में काम करते हुए लगभग एक दशक हो चुका है। अपनी ही एक संस्था, 'वनवासी सेवा संघ (वसेस)' के जरिए भाजपा जनजातियों के बीच हिन्दुत्व का संदेश पहुँचाती रही है। 'वसेस' जनजातियों को आदिवासी जिसका अर्थ है 'मूल निवासी' की जगह वनवासी कहने पर जोर देता है। ऐसा इसलिए कि 'वसेस' आर.एस.एस. की इतिहास की इस विचारधारा का समर्थक है कि आर्य ही भारत के मूल निवासी हैं। जाहिर है कि आदिवासी जो कि 'वसेस' की राय में गैर आर्य हैं, भारत के मूल निवासी नहीं हो सकते। अत: जनजातियों का आदिवासीपन हिन्दुत्व के लिए भारी खतरा है। 'वसेस' ईसाई मिशनरियों को आदिवासियों का एक प्रमुख दुश्मन के रूप में मानती रही है। जनजातीय लोग मिशनरियों को अच्छी तरह जानते हैं। वे धर्म परिवर्तन की बात को अच्छी तरह समझते हैं। वे यह भी जानते हैं कि मिशनरी लोग उन्हें अपने पारम्परिक गाने को नहीं गाने देते तथा उनके देवी देवताओं जैसे 'वावो पिथोरो' और 'इत्तलान'' जिनकी वे पूजा करते हैं, का गलत चित्रण करते हैं। गुजरात के डांग जिले तथा उड़ीसा व बिहार राज्यों में भी हाल के वर्षों में हिन्दुत्ववादी एजेंडे का समर्थन करनेवाली जनजातियों के गुस्से का ईसाई मिशनरियों को सामना करना पड़ा है।

यह एक दिलचस्प बात है कि वे जनजातीय लोग, जिन्होंने डांग जिले के ईसाई गिरजाघरों पर हमला किया और पंचमहाल, बनासकांठा तथा बड़ौदा जिलों में मुसलमानों की दुकानों व घरों पर आक्रमण किया, अभी भी अपने आपको आदिवासी कहते हैं। वे अपने आपको वनवासी कहने में अच्छा महसूस नहीं करते। दूसरे शब्दों में 'वसेस' व भाजपा इन जनजातियों को नफरत का एक राजनैतिक एजेंडा देने में एक हद तक सफलता तो जरूर प्राप्त की है परन्तु वे इन जनजातियों की पहचान को बदलने में सफल नहीं हुए हैं।

ये जनजातियाँ जिन्हें अपना शत्रु समझती हैं अब उनके प्रति बहुत नफरत रखती हैं। कांग्रेस द्वारा सुरक्षित उनकी गरीबी और भाजपा द्वारा नफरत की राजनीति का पाठ एक भयंकर मिश्रण बन सकती है। चूँकि हिन्दुत्व जो कि आर्यों के भारत के मूल-निवासी होने की आधारशिला पर खड़ा है, अपनी तार्किक परिणति में सभी जनजातियों सहित अल्पसंख्यक वर्गों से पूर्ण समर्पण की माँग करेगा और यह भी चाहेगा कि वे हिन्दू राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखें। ऐसी स्थिति में आदिवासी जनजातियों और वनवासी हिन्दुओं के बीच हिंसक झगड़े संभव है।

जनजातियों को उकसा कर मुसलमानों पर आक्रमण कराने से हिन्दुत्ववादी चिंतन को आगामी विधानसभा चुनाव के परिप्रेक्ष्य में कुछ सीमित फायदा जरूर पहुँचा है, लेकिन इस राजनैतिक प्रक्रिया का दूरगामी परिणाम राज्य के लिए उलझन पैदा करने वाला ही होगा। मार्च 2002 के दंगों के परिणामस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में राज्य सत्ता का ह्रास हुआ है। इसे पुन: स्थापित करना एक कठिन काम है।

दंगों के दौरान गुजरात के मुसलमानों को असह्य दुखों का सामना करना पड़ा है। इसी तरह उन हिन्दू परिवारों को भी दु:ख सहना-पड़ा है जिनके सगे-संबंधी गोधरा में साबरमती ट्रेन के डिब्बे में मारे गए। गुजरात की अर्थव्यवस्था को भी भारी धक्का लगा है और इसे उबरने में वर्षों लगेंगे। एक सभ्य जीवन जीना आज सबसे मुश्किल काम है। गुजरात राज्य में कानून और व्यवस्था सामान्य होने में कई वर्ष लगेंगे। गुजरात की जनजातियों को इन दंगों में घसीट लिया गया है और इस तरह उन्हें अनन्त हिंसा और आत्मभंजन की ओर धकेल दिया गया है।

इन दंगों के परिणामस्वरूप मुसलमान आज भी राहत शिविरों में पड़े हैं। उनका सबकुछ छिन गया है। वे स्वयं को इतना असुरक्षित महसूस करते हैं कि वापस अपने जले हुए घरों तथा दुकानों में शत्रुता भाव से भरे पड़ोसियों के बीच नहीं जाएँगे। गुजरात के भूकंप से 20 हजार लोगों की मृत्यु हो गई थी। और दुनिया के कोने-कोने से मिली सहायताओं तथा राज्य सरकार के प्रयासों के बावजूद इन परिवारों का पुनर्वास नहीं हो सका है। इन दंगों ने लगभग

एक लाख लोगों को विस्थापित तथा आर्थिक रूप से नष्ट कर दिया है। इसमें उन अनेक मुसलमानों की गिनती नहीं की गई है जिनका रोजगार छिन गया। ऐसी कोई संभावना नहीं है कि इतनी बड़ी संख्या का पुनर्वास हो सकेगा।

इन दंगों का दूसरा परिणाम है गुजरात की जनजातियों को नफरत की राजनीति सिखाना। यह आसानी से गैर

गुजरात के दंगों के थम जाने के बहुत बाद और जनजातीय दंगों के काबू होने के बाद जब ये लोग अपने खेतिहर कार्यों या शहरों में मजदूरी के कामों पर वापस लौटेंगे और भारतीय मीडिया रुख बदलकर षड्यंत्रों और अन्य सामाजिक दुर्घटनाओं की तरफ मुड़ेगा, उसके भी बहुत बाद तक हिंसा की समस्या हम लोगों के साथ रहेगी।

मुसलमानों के खिलाफ भी जा सकता है। गुजरात में लगभग 80 लाख जनजातीय लोग हैं जिनमें ज्यादातर लोग अत्यन्त गरीबी और भूखमरी के कगार पर हैं। इस बेसूझ-बूझ की राजनैतिक बहादुरी के दूरगामी परिणाम भयावह हैं। यद्यपि तेजगढ़ और पानवड़ के गाँव धीरे-धीरे सामान्य हो रहे हैं। लेकिन वे बहरा कर देनेवाली चीख को शायद ही भूल पाएँ जो उन्होंने मार्च, 2002 में सुनी थी। गुजरात के दंगों के समय की इन चीखों में करुणा और आतंक का विचित्र सम्मिश्रण था जिसमें देवत्व का जरा सा भी अंश नहीं था। यह दु:खद है कि इन दंगों के दौरान गुजरात की जनजातियों को आवाज तो मिली पर किसी आदर्श के लिए नहीं और न ही अपने घर और चूल्हा-चौका के सुधार के लिए अपितु राज्य द्वारा समर्थित हत्याकांड में दूसरे समुदाय को ध्वस्त करने के लिए।

गुजरात के दंगों के थम जाने के बहुत बाद और जनजातीय दंगों के काबू होने के बाद जब ये लोग अपने खेतिहर कार्यों या शहरों में मजदूरी के कामों पर वापस लौटेंगे और भारतीय मीडिया रुख बदलकर षड्यंत्रों और अन्य सामाजिक दुर्घटनाओं की तरफ मुड़ेगा, उसके भी बहुत बाद तक हिंसा की समस्या हम लोगों के साथ रहेगी। दंगों को दबाना और किसी भी हिंसक घटना पर सरकारें या राजनीतिक पार्टियाँ बदलकर हल निकालने की कोशिश थोड़े समय के लिए ही सफल हो सकती है। परन्तु किसी भी समस्या का दूरगामी समाधान निकालने के लिए समस्या की जड़ तक पहुँचना पड़ता है और यह काम प्रत्येक व्यक्ति द्वारा हर जगह, हर दिन किया जाएगा।

गुजरात के दंगों के दिनों में अलबर्ट कामू का, दिलों में उलझन पैदा करनेवाला उपन्यास, 'द प्लेग' बराबर मेरी सोच में आता रहा। इस उपन्यास में प्लेग की महामारी के दौरान 'ओरान' शहर के असामान्य जीवन का चित्रण है। अफसरशाही इस आपदा का फायदा उठाकर पैसा बनाती है। धार्मिक नेता इसे भगवान के नाराजगी की प्रमाण के रूप में देखता है तथा अन्य इस जगह से कहीं ऐसी जगह भाग जाना चाहते हैं जहाँ जीवन सामान्य हो। डॉ. मिउर्से (Dr. Meursault) उपन्यास के प्रमुख पात्र, वहाँ से नहीं हटने का फैसला करते हैं। वे घोषणा करते हैं, 'जो कुछ अपने स्थान पर रहकर मैं कर सकूँ वही मेरी पसन्द हैं।' महामारी धीरे-धीरे कम हो जाती है, इसलिए नहीं कि डॉ. मिउर्से उसे काबू करने में लगे हैं। यह आकस्मिक तरीके से समाप्त हो जाती है ऐसे ही जैसे शुरू हुई थी।

कामू की दृष्टि में बीमारी का शुरू होना और बंद होना दोनों ही बेमतलब है। कामू इस बात के लिए इच्छुक हैं कि कोई भी व्यक्ति सोच समझकर फैसला ले तथा उस फैसले की नैतिक जिम्मेदारी ले क्योंकि अस्तित्ववादी विचारधारा में जीवन चुनावों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं और साथ ही चुनाव करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि भगवान, सत्य अथवा न्याय जैसी कोई चीज नहीं है।

हमारे लिए आज चुनाव करना भी संभव नहीं है। आज हम ऐसी परिस्थिति में हैं कि यदि हम प्रतिक्षण काम नहीं करते हैं तो हमें हिंसा की सहापराधिता (उदासीनता) की जिम्मेदारी लेनी होगी। अत: सृजनात्मक कार्य ही हमारा एकमात्र भविष्य है, अन्य कोई रास्ता नहीं है अन्यथा हमारे लिए कोई भविष्य ही नहीं होगा। ■

(अंग्रेजी की मासिक पत्रिका 'सेमिनार, 513, मई 2002 से साभार। ट्राइबल अकादेमी, तेजगढ़ वड़ोदरा के निदेशक तथा आदिवासियों एवं अन्य हाशिए के लोगों के लिए सतत संघर्षरत डॉ. गणेश देवी के आलेख 'ट्राइबल वॉयस एण्ड वॉयलेंस' का अनुवाद। अनुवादक : अनिल कुमार पाण्डेय)

दलितों, आदिवासियों के लिये खतरे की घंटी???

■ गोपा जोशी

आर.एस.एस. ने 15 मार्च, 2002 के, अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक में पारित प्रस्ताव में कहा है कि मुसलमानों को यह समझ लेना चाहिए कि उनकी वास्तविक सुरक्षा बहुसंख्यकों की सद्भावना पर निर्भर है। इस प्रस्ताव तथा इससे पहले गुजरात में कराए गए खून-खराबे से हिन्दू समाज के बहुसंख्यक समुदाय को समझ लेना चाहिए कि उसे इन तथाकथित स्वयंभू धर्म के ठेकेदारों से कितना और क्या खतरा है? कंच इल्याह ने 18.3.2002 के **'द हिंदू'** में छपे अपने लेख में दर्शाया है कि हिंदुत्ववादी ताकतें अपने हिंसक आंदोलनों में पिछड़ों व दलितों को बलि का बकरा बना रही हैं। यहाँ पर उसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए, किस तरह इतिहास में दलितों को व्यवस्थित तरीके से सवर्णों की स्वार्थसिद्धि का साधन बनाया गया है, बताने की कोशिश की गयी है। इसका उद्देश्य, दलितों से केवल यह आग्रह करना है कि भविष्य में संघ परिवार के हिंसक आंदोलनों में भाग लेने से पहले वे सोचें कि इन आंदोलनों से किसके स्वार्थ की सिद्धि हो रही है। क्या यह उनके सदियों से चले आ रहे दमन शोषण को मजबूत करने की साजिश तो नहीं है?

आर.एस.एस. के 15.3.2002 के प्रस्ताव से मनु स्मृति की बू भी आती है। इस संहिता में मनु ने ब्राह्मणवाद के वर्चस्व को सुदृढ़ करने के लिए लिंग आधारित दमन, शोषण के अलावा जाति आधारित दमन, शोषण का भी संस्थानीकरण किया। मनु ने ब्राह्मणों को समस्त प्राकृतिक संसाधनों का मालिक बना दिया। ब्राह्मणों की सेवा करना ही शूद्रों का मुख्य कार्य कहा गया है। स्त्री की भांति विभिन्न जातियों के लिए ब्राह्मणों का कृपापात्र होना आवश्यक था। यह कृपा उनकी सेवा कर, कर्मकाण्ड कर, मोटी दान दक्षिणा देकर प्राप्त की जा सकती थी। इसमें स्पष्ट हिदायत दी गई है कि किसी भी शूद्र को संपत्ति का संग्रह नहीं करना चाहिए। चाहे वह इसके लिए कितना ही समर्थ क्यों न हो। इस प्रकार मनु ने, जनसंख्या के बहुत बड़े भाग को ब्राह्मणों की गुलामी के लिए आरक्षित कर दिया। मनु स्मृति में राजा को स्पष्ट हिदायत है कि वह वैश्यों और शूद्रों को अपना-अपना कार्य करने के लिए बाध्य करने के बारे में सावधान रहे क्योंकि जब ये लोग अपने कर्तव्य से विचलित हो जाते हैं तो ये इस संसार को अव्यवस्थित कर देते हैं। शूद्रों को विरोध करने की अनुमति मनु नहीं देता।

कंच इल्याह ने अपने लेख में यह भी बताया कि संघ परिवार के द्विज नेतृत्व का, प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र के

किस तरह इतिहास में दलितों को व्यवस्थित तरीके से सवर्णों की स्वार्थसिद्धि का साधन बनाया गया है, बताने की कोशिश की गयी है। इसका उद्देश्य, दलितों से केवल यह आग्रह करना है कि भविष्य में संघ परिवार के हिंसक आंदोलनों में भाग लेने से पहले वे सोचें कि इन आंदोलनों से किसके स्वार्थ की सिद्धि हो रही है। क्या यह उनके सदियों से चले आ रहे दमन शोषण को मजबूत करने की साजिश तो नहीं है?

संसाधनों पर, आधुनिक शिक्षा पर वर्चस्व है। आज सवर्णों के बच्चे जाने माने अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में अत्याधुनिक शिक्षा पाकर उदारीकरण से लाभान्वित होने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। जबकि पिछड़ों को सरस्वती शिशु मंदिरों में धर्म की घुट्टी पिलाकर सिर्फ 'कारसेवक' 'रामसेवक' बनाकर धर्म के नाम पर मरवाया या जेल की रोटी खिलाई जा रही है। अपने तर्क के समर्थन में कंच ने बताया कि

ुसार बाबरी मस्जिद गिराए जाने के बाद कारण जेल जाने वालों में तथा सजा छड़ों के ही नाम हैं। गुजरात के दंगाग्रस्त का मत है कि वहाँ बेरोजगार आदिवासियों, की मर्सनरी सेना बनायी गयी है। हाल विरुद्ध की गयी हिंसा में इनका बड़े किया गया है। हिंसा के बाद इनको देने की रपटें आ रही हैं। मसलन द्ध हिंसा में अग्रणी आदिवासी जिला में,

ल के राष्ट्रीय नेता गोविन्द नारस के पंडितों को आगाह , जब हिंदू लूटे जा रहे हों, दू समाज से वे लोग, जो केवल समानता चाहते हैं, जाए जा रहे हों तब पंडितों ने नहीं सोना चाहिए। गोविंद मानना था कि सवर्णों को समानता कि मांग करने का कोई अधिकार नहीं था जब वे छः करोड़ अछूतों को का अधिकार नहीं दे देते।

के बदले अनाज का कार्यक्रम चलाना, र किये गये हिंसक अपराधों के लिए ी लगता है। चूँकि इस तरह के कामों में होता है उसका लाभ भी सत्ता सुख भोग त्ववादियों को ही होगा। जबकि गरीब ाममात्र की मजदूरी ही मिलेगी। सवाल है सको सर्वाधिक सामाजिक, आर्थिक व मिल रहा है? कौन सर्वाधिक कीमतें दे ं दलित हिंदू सवर्णों से अपनी सर्वव्यापी रने के लिए कहते? उल्लेखनीय है कि ो छोड़कर संघ परिवार का शीर्ष नेतृत्व

सवर्ण है और जाति आधारित असमान व्यवस्था पर विश्वास करता है। कंच ने ठीक ही कहा है कि राम मंदिर आंदोलन से जुड़े सभी संगठनों का नेतृत्व द्विजों के हाथ में है। जबकि इस आंदोलन में कुर्बानी पिछड़े वर्गों के लोगों से दिलाई जा रही है।

अंग्रेजी सरकार की भारतीय प्रशासन में भागीदारी बढ़ाने की नीति ने दलित प्रश्न को भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण बना दिया। सभी संप्रदायों के लोग दलितों को अपने में शामिल करने की कोशिश करने लगे। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान दलितों की समान भागीदारी के सवाल पर सवर्णों ने जिस प्रकार रोड़े अटकाए यह दलितों को जान लेना आवश्यक है ताकि वे आज अपनी स्थिति को भली-भाँति समझ लें। सन् 1909 में जब अलग-अलग धर्मावलम्बियों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की कानूनी व्यवस्था की गई, दलित जनसंख्या का मुद्दा राजनीतिक तौर पर महत्वपूर्ण हो गया। यही वर्ग जिसको हिन्दुओं ने अपवित्र, ईश्वरविहीन करार दिया था, विधायिका में अपने सामर्थ्य से ईसाई, मुसलमान, सिख समुदायों की ताकत बढ़ा सकता था। सन् 1909 में मुसलमानों ने अपने लिये पृथक निर्वाचक मंडल की मांग के समर्थन में दलितों का प्रश्न उठाया। इसके बाद सन् 1911 की जनगणना में जातीय आधार पर जनगणना हुई। दलितों की जनगणना करने का जो निर्णय सन् 1911 में राजनीतिक दबावों के कारण किया गया था, सवर्णों ने उसका भी कट्टर विरोध किया। यह विरोध 1932 तक जारी रहा। इस साल 'लोथियन समिति' के सामने फिर दलितों की जनगणना के आँकड़ों को चुनौती दी गई। कई प्रान्तीय सरकारों ने तो अपने प्रान्तों में दलित नहीं होने की सूचना भी लोथियन समिति को दी। लोथियन समिति की नियुक्ति भारतीय गोलमेज सम्मेलन की मताधिकार-उपसमिति की सिफारिशों का परिणाम थी।

इसके बाद दलित प्रश्न राजनैतिक कारणों से महत्वपूर्ण हो गया। अछूतों को अपने में समाहित करने की कोशिश के राजनैतिक परिणाम के मद्देनजर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने हिंदू संप्रदाय के भीतर दलितों के प्रति छुआछूत के

व्यवहार को स
किया। सन् 19
ने बनारस के प
जा रहे हों, ज
केवल समानता
पंडितों को चै
मानना था कि
का तब तक
करोड़ अछूतों
उन्होंने अपने
से कम शूद्र

**जब तक
देश नहीं
इन वर्गों
में कु
सकती।
बिना
जाएगी।
इनकी
थे, इन
को अछू
शोष**

1911 में ही
1900 में क
अपील की
कांग्रेसी नेता
ब्राह्मणों द्वारा
हटाना था।
सामाजिक व
पंडितों ने इ
राष्ट्रवादी ता
के बिना संभ
की समानता
राष्ट्र के उद

व्यवहार को समाप्त करने के लिए माहौल बनाना आरंभ किया। सन् 1911 में, बंगाल के राष्ट्रीय नेता गोविन्द दास ने बनारस के पंडितों को आगाह किया कि, जब हिंदू लूटे जा रहे हों, जब हिंदू समाज से वे लोग, जो सवर्णों से केवल समानता चाहते हैं, बाहर ले जाए जा रहे हों तब पंडितों को चैन से नहीं सोना चाहिए। गोविंद दास का मानना था कि सवर्णों को अंग्रेजों से समानता कि मांग करने का तब तक कोई अधिकार नहीं था जब तक कि वे छः करोड़ अछूतों को समानता का अधिकार नहीं दे देते। उन्होंने अपने साथियों से अपील की कि अंत्यजों को कम से कम शूद्र का दर्जा तो दिया ही जा सकता था। सन्

जब तक अछूत गरीब और अज्ञानी रहेंगे देश नहीं जाग सकता । उन्होंने कहा कि इन वर्गों की भागादारी के बिना भारत में कृषि की कल्पना नहीं की जा सकती। यही नहीं इनकी भागीदारी के बिना पूरे देश में अर्थव्यवस्था हिल जाएगी। उन्होंने ऊँची जातियों की- जो इनकी मेहनत का फल भोगते आ रहे थे, इन सीधे-साधे मेहनती, विनम्र, लोगों को अछूत कहने तथा उनका दमन और शोषण करने के लिए भर्त्सना की।

1911 में ही कांग्रेसी नेता एन. जी. चन्द्रावरकर- जो सन् 1900 में कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे- ने ब्राह्मणों से अपील की कि वे छुआछूत उत्थान कार्यक्रम प्रारंभ करें। कांग्रेसी नेताओं की ब्राह्मणों से की गई अपीलों का मकसद ब्राह्मणों द्वारा अछूतों पर लगाए गए धार्मिक नियंत्रणों को हटाना था। ब्राह्मण ही अछूतों को सवर्णों के समान सामाजिक व धार्मिक अधिकार दे सकते थे। लेकिन हिन्दू पंडितों ने इस सवाल पर कड़ा रुख ही अपनाए रखा। राष्ट्रवादी ताकतों को भारतीय राष्ट्र की परिकल्पना दलितों के बिना संभव नहीं लगी। अतः छुआछूत विरोध व दलितों की समानता का सवाल हिन्दू समुदाय की अस्मिता तथा राष्ट्र के उदय के साथ जुड़ गया। हिन्दू राष्ट्रवादियों के लिए दलितों के लिए हिन्दू समुदाय में मानवीय व्यवहार तथा सम्माननीय स्थान बनाने की कोशिश राजनीतिक आवश्यकता हो गई। इसके साथ-साथ अछूतों के उत्थान के मसले पर राष्ट्रीय स्तर पर बहस मुबाहिसा प्रारंभ हो गया। ऐनी बेसेन्ट, लाला लाजपतराय, अम्बिका चरण मजूमदार ने 'इंडियन रिव्यू' द्वारा चलाई बहस में भाग लिया और लेख लिखे। सन् 1910 में लाला लाजपतराय ने अपने लेख में 'डिप्रेस्ड क्लासेस' की समस्या को सर्वाधिक व्यावहारिक समस्या माना। उन्होंने कहा कि हिन्दू समाज इन वर्गों के हितों की उपेक्षा करके स्वयं को खतरे में डाल रहा था। उन्होंने अछूतों को शिक्षित करने पर जोर दिया। उनका मानना था कि अपने को एक राष्ट्र मानने से पहले अछूतों को समाज में उचित दर्जा दिया जाना चाहिए, अन्यथा राष्ट्रीय एकता, अखण्डता संभव नहीं थी। अम्बिकाचरण मजूमदार, जिन्होंने सन् 1916 में लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की, ने 'इंडियन रिव्यू' में छपे अपने लेख में 'डिप्रेस्ड क्लासेस' की समस्या के राजनैतिक पहलू पर प्रकाश डाला। उन्होंने ऊँची जातियों को आगाह किया कि उनके विरोध के बावजूद 'डिप्रेस्ड क्लासेस' की स्थिति में सुधार आएगा। लेकिन इससे राष्ट्र के लिए दूरगामी दुष्परिणाम होंगे। इसके बाद सन् 1911 में मद्रास में, 'इंडियन रिव्यू' के तत्वावधान में 'डिप्रेस्ड क्लासेस' का सम्मेलन हुआ। इसमें 'इंडियन रिव्यू' के संपादक ने देश के विकास में अछूतों के योगदान का मूल्यांकन किया। उनके आर्थिक शोषण की भर्त्सना की तथा भविष्यवाणी की कि जब तक अछूत गरीब और अज्ञानी रहेंगे देश नहीं जाग सकता । उन्होंने कहा कि इन वर्गों की भागादारी के बिना भारत में कृषि की कल्पना नहीं की जा सकती। यही नहीं इनकी भागीदारी के बिना पूरे देश में अर्थव्यवस्था हिल जाएगी। उन्होंने ऊँची जातियों की- जो इनकी मेहनत का फल भोगते आ रहे थे, इन सीधे-साधे मेहनती, विनम्र, लोगों को अछूत कहने तथा उनका दमन और शोषण करने के लिए भर्त्सना की। उन्होंने बताया कि पिछले 50 साल से दलितों की मजदूरी नहीं बढ़ी, उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता रहा था। उनकी दीन-हीन स्थिति को हिन्दू समाज पर कलंक कहा। उन्होंने माना कि तत्कालीन राजनीतिज्ञ देश की

एकता के लिए दलित वर्गों एवं सवर्णों के बीच एकता को आवश्यक मानते थे। छुआछूत की समस्या के निदान के लिए भी समाज के शिक्षित, संभ्रांत लोगों का समर्थन आवश्यक माना। दलितों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए, उनको कृषि के लिए परती भूमि देने की भी वकालत की।

जहाँ कृषि के क्षेत्र में दलित खेतिहर मजदूर थे वहीं खानों, खदानों, सड़क निर्माण, रेलवे लाइन बिछाने, जूट की मिलों में उनकी हैसियत अकुशल कारीगरों की थी। कॉफी व रबड़ के बागानों में भी अधिकतर आदिवासियों व अछूतों को ही काम दिया जाता था। ये काम कठिन व श्रमसाध्य होते थे, इनमें मजदूरी भी कम मिलती थी। हल्के व कुशल काम सवर्णों को दिए जाते थे। इन उद्योगों में

सवर्णों का अछूतों की शिक्षा के लिए विरोध इतना तीव्र था कि सन् 1924 में अंत्यज बच्चों के भर्ती करने के विरोध में कई सवर्णों ने, वर्धमान राष्ट्रीय विद्यालय से, अपने बच्चे हटा लिए। कई शिक्षकों ने इस्तीफा दे दिया। कई बोर्ड के सदस्यों ने भी अपने को बोर्ड की गतिविधियों से अलग कर लिया।

काम करने वाली स्त्रियों, जो दलित होने के साथ-साथ गरीब व अक्सर असहाय भी होती थीं, को तो और भी बदतर काम व कम मजदूरी दी जाती थी।

गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने छुआछूत मिटाने के कार्यक्रम लिए। सन् 1920 में उन्होंने लिखा कि छुआछूत उन्मूलन किए बगैर स्वराज प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी साल कांग्रेस ने नागपुर अधिवेशन में प्रस्ताव पास कर छुआछूत की भर्त्सना की। केरल के वाइकम सत्याग्रह के दौरान गाँधी ने पंडितों से छुआछूत के धार्मिक आधार पर लम्बी बहस मुबाहिसा किया। अंत में पंडितों ने छुआछूत के धर्म स्वीकृति होने का अपना तर्क छोड़कर, गाँधी से अनुरोध किया कि वे अवर्णों को पंडितों के विशेषाधिकारों को छीनने के लिए प्रेरित न करें। सन् 1920 में गाँधी जी की अध्यक्षता में 'गुजरात विद्यापीठ' को एक प्रस्ताव पास करना पड़ा कि विद्यापीठ, मान्यता प्राप्त स्कूल अछूतों को दाखिला देने से मना नही कर सकेगें। इसका गुजरात व बम्बई के सवर्ण हिन्दुओं ने विरोध किया। गाँधी ने 'यंग इण्डिया' के 20.11.1920 के लेख में माना कि इस कारण विद्यापीठ के दो हिस्से हो सकते थे। 5.12.1920 के 'नवजीवन' में गाँधी ने लिखा कि उन्हें हरेक से यह राय/धमकी मिल रही थी कि यदि अछूतों को स्कूलों से नहीं निकाला गया तो स्वराज आंदोलन फेल हो जाएगा। इन छुआछूत समर्थक लोगों को गाँधी ने चेताया कि सरकार अपनी 'फूट डालो राज करो' नीति के तहत हिन्दुओं को भी अछूत और सवर्ण में बाँट सकती थी। उन्होंने कहा कि स्वराज प्रेमी हिंदू अछूतों के उद्धार व हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए काम करेगा। सन् 1924 में गांधी ने माना कि अनेक गांवों में सवर्ण या तो अछूतों में शिक्षा प्रसार का विरोध कर रहे थे या इसके प्रति उदासीन थे। 5.5.29 के 'नवजीवन' के लेख में वे बताते हैं कि बिरला द्वारा अछूत उत्थान के लिए दिया गया दान खर्च नहीं हो पाया क्योंकि अंत्यज स्कूलों में पढ़ाने के सवर्ण शिक्षक तथा अत्यंजों के लिए कुएँ खोदने के लिए पर्याप्त कारीगर नहीं मिल रहे थे। सवर्णों का अछूतों की शिक्षा के लिए विरोध इतना तीव्र था कि सन् 1924 में अंत्यज बच्चों के भर्ती करने के विरोध में कई सवर्णों ने, वर्धमान राष्ट्रीय विद्यालय से, अपने बच्चे हटा लिए। कई शिक्षकों ने इस्तीफा दे दिया। कई बोर्ड के सदस्यों ने भी अपने को बोर्ड की गतिविधियों से अलग कर लिया।

काठियावाड़ में अंत्यजों को पीने का पानी कुओं से नहीं लेने दिया जाता था। वे पशुओं के पानी पीने वाली नाली से पानी लेते थे। अंत्यजों के स्कूलों में सवर्ण शिक्षक न होने पर भी गाँधी ने अक्सर अपना रोष जताया। यही नहीं इन स्कूलों में पीने के पानी की भी व्यवस्था नहीं थी। अछूतों के बीच भी छुआछूत बरती जाती थी। सन् 1931 के करांची अधिवेशन में कांग्रेस ने अम्बेडकर के प्रभाव में

मूल अधिकारों और आर्थिक नीतियों की घोषणा की। इसमें अछूतों के लिए भी समान रूप से लोकतांत्रिक स्वतंत्रता का प्रावधान था। जाति व धर्म आधारित प्रतिबन्धों का निरस्त्रीकरण तथा बेगार प्रथा को गैरकानूनी करार देने के प्रावधान थे। समाज के कट्टरपंथी सवर्ण तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं द्वारा सुझाए गए इन सतही सुधारों तथा सार्वजनिक स्थानों में सीमित सुविधाएँ भी दलितों को देने को तैयार नहीं थे। यदि कुछ उदारवादी शासक जैसे बड़ौदा के महाराज गायकवाड़ ने शिक्षा संस्थानों में दलित बच्चों को प्रवेश देने की अनुमति दी तो ऊँची जाति के लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया।

क्या हिंदू समाज में आज भी दलितों का दोयम दर्जा नहीं है? क्या संसाधनों की भागीदारी में वे हाशिये पर नहीं हैं? क्या आज भी उन पर जाति के आधार पर अत्याचार नहीं हो रहे हैं? क्या वे तथाकथित हिंदूवादी इनको रोकने के कारगर कदम उठा रहे हैं? क्या दलितों के अताताइयों के विरुद्ध पर्याप्त कानूनी कार्रवाई हुई है? यदि नहीं तो इनके इशारों पर अपराधी बनने से अच्छा है दलित समाज अपने लिए सम्मानजनक हैसियत प्राप्त करने के लिए संघर्ष करे। इन हिंसक आंदोलनों से बड़े व्यवस्थित ढंग से दलितों का अपराधीकरण हो रहा है। पिछले 50 सालों के जनविरोधी विकास की वजह से गरीबी बढ़ी है। उदारीकरण की वजह से गरीब के उत्थान के कागजी वादे भी थम गये हैं। अब सरकार श्रमिक विरोधी कानून बनाना अपरिहार्य बताने लगी है। गरीबों के विरोध की धार को कुंद करने के लिए आवश्यक है कि इनको आपस में बाँटो और लड़ाओ और जब ये सरकार के लिये परेशानी पैदा करते हैं तो इनको अपराधी बताकर इनके विरुद्ध विशेष कार्रवाही की जाए। 'टाडा' कानून का दुरुपयोग संघर्षरत गरीबों के विरुद्ध ही किया गया था। अब 'पोटा' ने उसका स्थान ले लिया है। दूसरा अंग्रेजों ने भी अपने स्वार्थ के लिये पहले भारत की कई जातियों, जनजातियों व कबीलों के रोजी-रोटी के साधन छीने फिर उनको अपराधी घोषित कर उन पर अमानवीय नियंत्रण लगाए थे। क्या हिंदुत्व के नाम पर गरीब बेरोजगार दलित नौजवानों को जिंदा जलाने, बलात्कार करने, मारने, लूटने, काटने के लिये संगठित करना दलितों को फिर अपराधी घोषित कर हमेशा के लिये दबाए रखने की साजिश नहीं है? यह दलितों, पिछड़ों व आदिवासियों को समान दर्जा देने का कार्यक्रम तो कतई नहीं है।

इसलिए आज 21वीं सदी में, हमारे संविधान को धता बताते हुए, भारत में पैदा हुए, समान नागरिक, मूल और मानव अधिकारों के हकदार मुसलमानों के लिए यदि इस तरह की भाषा का इस्तेमाल कर सकता है तो हिंदुत्व के घोड़े पर सवार होकर आने के बाद ये लोग दलित, पिछड़ों तथा आदिवासियों के साथ क्या सलूक करने वाले हैं, यह समझ लेना आवश्यक है। लगभग सौ साल के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने व कुरबानी देने के बाद, अर्जित राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद संविधान में दिये गए ये अधिकार इस देश के सभी नागरिकों को समान रूप से उपलब्ध हैं। इसके विपरीत पिछड़ों, दलितों व आदिवासियों पर हिंदू समुदाय के जातीय नियम भी लागू होते हैं जिनके तहत समाज सवर्ण-अवर्ण के बीच बँटा है। यह विभाजन चहुमुखी है तथा सदियों से अवर्णों को अशिक्षित तथा हाशिये पर रखने में सफल रहा है। भारतीय संविधान में प्राप्त मूल अधिकारों की वजह से, सदियों से समाज के हाशिये में रहने के लिए अभिशप्त ये लोग, व्यवस्था में समानता की माँग करने लगे हैं तथा अपनी माँगों को मनवाने के लिये आंदोलन व संघर्ष कर रहे हैं। इन संघर्षों की धार कुंद करने के लिये ही इन्हें धर्म की अफीम चटाकर अपराधी बनाया जा रहा है, ताकि हिंदू, मुसलमान, और ईसाई दलित आपस में धर्म के नाम पर मरते-कटते तथा एक दूसरे को उजाड़ते रहें और सवर्ण समाज के हर क्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाये रखे। उदारीकरण के इस दौर में, जब एक बार फिर, संसाधनों का थोड़े लोगों के हाथों में केन्द्रीयकरण हो रहा है, इस तरह की 'बाँटो और राज करो' की रणनीति संघ परिवार के लिये अपने वर्चस्व को और मजबूत करने के लिये आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि धर्म के नाम पर, अवर्णों को भड़का कर, बाँटने का यह तरीका कोई नया नहीं है। ■

(गोपा जोशी, रामजस कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली में राजनीतिशास्त्र की प्रोफेसर हैं)

परम धिकारो

■ सुहास दास

भोर होने से पहले ही उसे घर से निकलना था। तीन मोहल्लों, या कहो पाड़ा में बंटा है उसका गाँव। वो नमोपाड़ा का रहने वाला है, जहाँ उसकी तरह और बहुत से दरिद्र बसते हैं। हाथ का सिया एक थैला लाठी के एक छोर पर लटक रहा था, जिसे वह आमतौर पर कंधे पर टिकाए चलता था। उसने थोड़ी मूढ़ी और दो फटी धोतियाँ अपने थैले में डालीं। शाम होने से पहले रानीबहल पहुँचने के लिए उसे तेज डग भरने थे, सिध और नूनबिल जैसी दो नदियाँ भी पार करनी थीं। सड़क की मरम्मत के लिए यहाँ काम चल रहा था।

बूढ़ी माँ और पाँच साल की बेटी को उसने नमोपाड़ा में ही छोड़ दिया। पत्नी दो बरस पहले ही गुजर चुकी थी। पंद्रह मार्च और चौदह अप्रैल के बीच चैत मास लगता है। फाकों और अभावों से जूझते भूमिहीनों के लिए सजा से कम नहीं होता ये महीना। दो जून के खाने का जुगाड़ तक नहीं हो पाता। दिन में बड़ी मुश्किल से एक बार उबला भात और शाम को उबले हुए महुआ के फूल या कभी-कभार ज्वार मिल पाता था।

पर अब तो चावल भी बूते से बाहर हो गया है। बुढ़िया जंगली खजूर के पत्तों से चटाई बनाती है या कपास के फल बटोरती है। लेकिन अब तो कपास के पौधे भी सूख रहे हैं। इसलिए आदमी ने रानीबहल जाने का मन बनाया। बच्ची खूब रोई, पर उसने पुचकारा, वादा किया कि लौटते हुए थैला भरके पके कैंद लाएगा।

पंचायती सड़क छोड़ अब वह धान के खेत में चलने लगा। गिरे हुए धान बटोरने और चूहे पकड़ने के लिए लोगों ने खेत में कहीं-कहीं खुदाई की हुई थी। फिर भी यह रास्ता गाँव के रास्ते से कहीं बेहतर था। जंगली बेर की झाड़ियाँ। सूरज तपने लगा था। उसने साल की एक टहनी तोड़ी और तान लिया सर पर छाते की तरह। और इस तरह वह सिध तक पहुँच ही गया।

एक पेड़ तले रुककर उसने थोड़ा विश्राम किया। रेत खोदी और उससे निकले शीतल जल से अपनी प्यास बुझाई। और फिर गाँव पहुँचने के छोटे रास्ते को पकड़ा। उसके पास न कुदाल थी न ही फावड़ा। खुदाई का काम कैसे होगा। लेकिन चिंता करने से भी क्या होता। औजार तो है नहीं उसके पास। फिर याद आया कि रानीबहल में उसके कुछ संबंधी भी तो हैं। उसकी स्वर्गवासी पत्नी के मौसरे भाई। वह उनसे कुछ समय के लिए मांग लेगा औजार।

रास्ता सुनसान था। पर अब इक्का-दुक्का गाँव वाले दिखने लगे।

- कहाँ जा रहे हो तुम, भई?

- रानीबहल।

- तेज चलो, बहुत दूर है यहाँ से।

शाम के तीन बज रहे थे। सूरज पश्चिम को छू रहा था। अचानक उसे आसमान के पश्चिमी छोर पर बादल गहराते दिखाई दिए। जरूर तूफान आएगा। नजर दौड़ाने पर दूर-दूर तक खेत ही खेत थे पर आगे एक गाँव भी दिख रहा था। उसने बेतहाशा दौड़ना शुरू कर दिया। उसे तूफान से पहले उस गाँव तक पहुँचना था।

तूफान पश्चिम की ओर से उठ रहा था और वह भी उसी दिशा की तरफ दौड़ा चला जा रहा था। जैसे-तैसे वह एक झोपड़ी तक पहुँचा कि आसपास की पूरी धरती ओलों से ढक गई। दरवाजे और खिड़कियाँ कस के बंद थीं। वो मवेशीघर में घुस गया। चार बैल और बहुत सी बकरियाँ थीं

वहाँ। उसने बकरियों के झुंड में अपने लिए कुछ जगह बनाई। भयानक तूफान और वर्षा। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली से आकाश काँप रहा था। कहीं कोई पेड़ गिरा था। तूफान से मवेशीघर की छत उड़ने का अंदेशा था।

तूफान थमा तो रात घिर आई। इस समय वहाँ से बाहर निकलना संभव नहीं था, इसलिए उसने सोचा रात मवेशीघर में गुजार कर सुबह होते ही निकल लेगा। भूख से बेहाल था, इसलिए थैला खोलकर मूढ़ी निकाली खाने को।

तूफान थम चुका था। एक तरुणी ब्याहता लालटेन लिए मवेशीघर का जायजा लेने निकली। जैसे ही लालटेन की रोशनी से रास्ता बनाया, आदमी को देखकर चिल्लाई – चोर! चोर!

बिना क्षण गँवाए दूसरे भी ब्याहता के साथ स्वर मिलाने लगे। आदमी वहाँ से भागा। कुछ गाँव वालों ने उसे घेरकर पकड़ा और पीटने लगे।

– बता साले, कहाँ से आया है तू?

– कुसुमडीह। मैं चोर नहीं हूँ। मैं तो मजदूरी करने के लिए रानीबहल जा रहा था।

– नाम क्या है तेरा?

– परम धिकारो

– धिकारो! सबके सब चोर होते हैं साले!

शुरू हुई लातों–घूसों की बौंछार। मार से बचने की लाख कोशिश की पर बस न चला। दर्द से दोहरा हुआ बिलबिलाता रहा और फिर शान्त हो गया।

एक वृद्ध लालटेन लिए आगे बढ़ा। एक ने उसके औंधे पड़े शरीर को पकड़कर सीधा किया। उसकी ठंडी पड़ी आँखों में झाँकते हुए एक ने उसकी नब्ज टटोली और बोला, 'ये तो मर गया।'

उनमें से एक ने तहकीकात का जिम्मा संभालते हुए उसका थैला खंगाला और तलाशी ली। मूढ़ी। दो फटी धोतियाँ। 'मूढ़ी क्यों' वह बोला।

– वो मूढ़ी लेकर चोरी करने आया था? तुमने ऐसे गरीब आदमी को मार डाला?– एक बूढ़े ने कहा।

– माथे पे थोड़े ही लिखा था? धिकारो था। पूरी की पूरी जात चोर है साली।

– बकरी चुराने आया था।

– मूढ़ी बाँधकर? मूढ़ी चबाते हुए बकरी चुराता ना वो?

भीड़ असमंजस में थी। समझ नहीं पा रही थी कि वो चोरी करने आया था या तूफान से बचने। उसे पीटने वालों के हृदय ग्लानि से भर उठे। वह बोला, "धिकारो और मेरा दिमाग भन्ना गया" – एक ने कहा।

'साले!' थानेदार बोला, 'लाश को खुद ही ठिकाने लगा देते, पर चले आए थाने।' उसने एक और सिगरेट जलाई और बोला, 'सुबह होने से पहले उसे फूँक दो, जुबान मत खोलना वर्ना फँस जाओगे।'

सबने थानेदार के पाँव छुए और चल दिए वहाँ से। उन्होंने परम धिकारो की लाश जलाई। उसकी लाठी और थैले को मवेशीघर में ही रख दिया गया। इस गाँव में छोटे किसान और खेतीहर मजदूर बसते थे। ग्लानि ने एक बार फिर सबको आ घेरा।

परम धिकारो की लाश के इर्द-गिर्द उन्होंने आसन जमाया और लगे सोच विचार करने कि अब क्या किया जाए? शहर बहुत दूर है और लाश ठिकाने लगाने के शहरी तरीके से भी अंजान हैं वो लोग। इसमें खतरा है। ऊपर से गाँव की जनानियाँ एक अलग सिरदर्द। जुबान कैंची की तरह चलती है, सब उगल देंगी। जंगल में आग की तरह फैलेगी खबर, आफत आ जाएगी।

रात ही रात में मामला रफा–दफा करना था। पौ फटते ही दूसरे गाँवों के लोगों की चहलकदमी शुरू हो जाएगी।

वो देखेंगे और खबर दूर-दूर तक जाएगी। बड़े-बूढ़ों ने थाने जाने का फैसला किया। थाना गाँव से करीब तीन किलोमीटर दूर था। कुछ थाने के लिए निकल लिए और बाकी लाश के पास ही जमे रहे।

वर्षा के बाद की मंद ठंडी हवा का आनन्द लेते हुए थानेदार अपने क्वार्टर में लंबी ताने सो रहा था। हवलदार ने जाकर उसे जगाया।

गुस्से में तमतमाता पहुँचा दफ्तर।

- क्यों आये हो इतने सारे जन, इस भरी रात में?

- हुजूर, हमारे गाँव में एक चोर आ गया था।

- तो क्या हुआ?

मवेशीघर के सामने वो एक पेड़ के नीचे बैठ गई। एक-एक करके गाँव वाले भी वहाँ जुटने लगे। बुढ़िया जमीन पर लोटते हुए मातम करने लगी। ''कहाँ चला गया रे तू? मेरे बेटे!'' घर का कामकाज छोड़कर बड़ी-बुढ़ियाँ उसके पास आ बैठी, 'क्या करें माई? जीवन और मृत्यु इन्सान के बस के बाहर है।'

- वो बकरियाँ चुरा रहा था, माई बाप।

- तो तुमने उसे पकड़ लिया?

- जी हुजूर, एक ने हाथ मलते हुए कहा।

- फिर?

- थोड़ा सा पिटने से ही मर गया।

- क्या? वो मर गया? नाम क्या था उसका?

- कुसुमडीह का परम धिकारो।

- धिकारो, वो चोर जात। पूरी जात एक दुखता नासूर है।

- जी माई बाप। लड़कों ने धिकारो सुना तो उनका माथा फिर गया और उसे मार डाला।

थानेदार कुछ देर चुप रहा फिर सिगरेट की डिब्बी से एक सिगरेट निकालकर सुलगाई, धुएँ का लंबा सा कश खींचा और उसे छोड़ते हुए बोला– धिकारो की मौत से थोड़ी गंदगी से ही निजात मिली है, पर जो कुछ तुमने किया वो गैरकानूनी है। मुझे तुम्हारे साथ गाँव जाना पड़ेगा और हत्या के दोषी लोगों को गिरफ्तार करना होगा। लाश शहर के मुर्दाघर भेजनी पड़ेगी। बहुत झमेला है।

सबके सब थानेदार के पाँव पड़ने लगे, बोले, 'माई बाप! कुछ तो करो।'

'साले!' थानेदार बोला, 'लाश को खुद ही ठिकाने लगा देते, पर चले आए थाने।' उसने एक और सिगरेट जलाई और बोला, 'सुबह होने से पहले उसे फूँक दो, जुबान मत खोलना वर्ना फँस जाओगे।'

सबने थानेदार के पाँव छुए और चल दिए वहाँ से। उन्होंने परम धिकारो की लाश जलाई। उसकी लाठी और थैले को मवेशीघर में ही रख दिया गया। इस गाँव में छोटे किसान और खेतीहर मजदूर बसते थे। ग्लानि ने एक बार फिर सबको आ घेरा। अब सबको लग रहा था कि परम चोरी के लिए नहीं बल्कि आश्रय लेने आया था। हालांकि कुछ लोग अब भी उसे चोर मान रहे थे, लेकिन उन पर गाँव वाले ध्यान नहीं दे रहे थे।

चूंकि उनके यहां एक मासूम मारा गया है, तो उन्हें यह डर सालने लगा था कि अब कोई अनहोनी जरूर होगी। मवेशीघर वाले कुनबे को भी लगा कि कुछ न कुछ अपशगुन तो जरूर होगा। कोई साँप के डसने से मरेगा या पागल कुत्ते के काटने से या फिर पानी में ही कोई डूब मरेगा।

तरुणी ब्याहता फिर बौराई हुई चीखी, चोर! चोर! वह इस हादसे के लिए खुद को दोषी मान रही थी। अँधकार उसे डराने लगा था। एक दिन तालाब से नहा कर लौट रही थी कि अचानक चीखी और बेहोश हो गई। पति उसे घर तक लाया। होश में आते ही बोली, ''वह मेरे सामने खड़ा था।''

- कौन?

– परम धिकारो।

गाँव वालों ने एक दूसरे को ताका। अगले ही दिन किसी ने उस जगह एक छाया देखी जहाँ परम गिरा था। अब तो गाँव वाले भी घबरा गए। वह तारणी पहाड़ियों के पास वाले गाँव गए और वहाँ से एक गुणी को बुला लाए। गुणी घंटों तक उस जगह पर बैठ कर मंत्र फूँकते हुए मिट्टी पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचता रहा। फिर बोला, 'तुम्हारा कहना है कि वह तूफान की रात एक हादसे में मरा।'

– जी हाँ!

– कैसा हादसा?

– बिजली गिर गई थी उस पर।

– उसकी आत्मा भटक रही है।

– अब क्या करें?

– उसके संबंधियों को सूचना दो। नाम क्या था उसका?

– ओह! उनमें श्राद्ध नहीं होता। ब्राह्मण, पुजारियों को तो पास फटकने नहीं देते।

– फिर?

– उसके अपनों को बुलाओ। वही कोई अंतिम रस्म कर देंगे।

गाँव वालों ने एक दूसरे की ओर देखा। हाँ! उसके संबंधियों को तो बताना ही होगा। परम ने अपने गाँव का नाम बताया था।...

पर क्या बताएँगे उन्हें? हाँ, वो कहेंगे कि बिजली गिरने से मर गया। चूँकि अंतिम संस्कार में देर करना अशुभ होता है इसलिए प्रतीक्षा नहीं की। लेकिन जाएगा कौन? जो बहुत फुदक रहा है वह तो नहीं ही जाएगा। जाने क्या अनाप-शनाप बक दे। तब कौन जाएगा? मैं जाऊँगा, अचानक एक ने कहा।

– तुम?

– हाँ! मैं हर हफ्ते वहाँ गाँव के हाट में जाता हूँ।

– उसका नाम जानते हो?

– मैं सभी गाँव वालों को जानता हूँ। कुसुमडीह, सुद्रखीपार (Sudrakhipar) के पास है, जहाँ खेजुरी (Kheijuri) नदी कटती है। मैं उसके लोगों को बता दूँगा।

– वो एक दुर्घटना में मरा है और हमने उसका अंतिम संस्कार कर दिया।

– हाँ! चिंता मत करो।

अगले ही दिन वह निकल पड़ा। सिध और नूनबिल पार करते हुए वह कुसुमडीह पहुँचा। गाँव से तो वह परिचित था। गाँव में किसी ने नमोपाड़ा बस्ती की तरफ इशारा कर दिया। नमोपाड़ा में एक ने परम का झोपड़ा दिखा दिया।

झोपड़े के आगे ताड़ के पत्तों का छप्पर पड़ा था। एक बुढ़िया खजूर के पत्तों से चटाई बना रही थी और पास ही एक बच्ची खेल रही थी।

वो आदमी कुछ देर खामोश खड़ा रहा। दिल पर धक्का सा लग रहा था। लोगों के सामने तो बड़ी डींग हांकी थी कि वह ये काम कर देगा। पर बुढ़िया पर क्या गुजरेगी? क्या वो झेल पाएगा यह सब।

इस काम को अपने जिम्मे लेने के लिए उसने खुद को बहुत कोसा।

वह छप्पर में घुसा और बैठते ही पूछा, 'यह परम धिकारो की झोपड़ी है?'

काम रोककर बुढ़िया ने अपनी धुंधली आँखों से उसे

एक गुड़ चूड़ा ले आया। दूसरे ने बच्ची को दो पके कैंद के फल थमा दिए। बुढ़िया ने परम की लाठी और थैला उठाया। उसने वही राह पकड़ी जिस पर चलकर उसका परम वहाँ पहुँचा था; वो फिर चीखी, 'हाय परम! हाय मेरे बच्चे!'

परम के कातिल फुसफुसाए– क्या जरूरत थी उसे 'धिकारो' शब्द मुँह से निकालने की...!

देखा और बोली, ''हाँ बेटा। पर परम तो काम के सिलसिले में रानीबहल गया है।''

हिम्मत बटोरने के लिए उस आदमी ने एक बीड़ी सुलगाई और बोला, ''तूफान की रात कुमावाबाद में परम एक दुर्घटना में मारा गया, तू एक बार वहाँ चली जा...''

बुढ़िया ठीक से सुन नहीं पाई थी। अपना कान आदमी के करीब लाते हुए बोली, 'क्या कहा तूने बेटा?''

''तूफान की रात कुमावाबाद में वो एक हादसे में मर गया। तू वहाँ चली जा।''

वो जमीन पर गिर गई। छाती पीटते हुए चीखी हाय परम! हाय मेरे बच्चे!

आदमी वहाँ से निकल लिया। अब नमोपाड़ा के लोग भी वहाँ पहुँचेंगे। वो उस हादसे के बारे में भी पूछ सकते हैं। आदमी सर पर पाँव रखकर बाजार की तरफ भागा।

अगले ही दिन बुढ़िया अपनी पोती को संग लिए कुमावाबाद पहुँच गई। गाँव वाले भी उसी की बाट जोह रहे थे। मवेशीघर के सामने वो एक पेड़ के नीचे बैठ गई। एक-एक करके गाँव वाले भी वहाँ जुटने लगे। बुढ़िया जमीन पर लोटते हुए मातम करने लगी।

''कहाँ चला गया रे तू? मेरे बेटे!''

घर का कामकाज छोड़कर बड़ी-बुढ़ियाँ उसके पास आ बैठी, 'क्या करें माई? जीवन और मृत्यु इन्सान के बस के बाहर है।' एक आदमी लाठी और थैला ले आया। बुढ़िया ने थैला टटोला तो उसमें से मूढ़ी निकली।

– हाय ये तो मैंने उसे दी थी रास्ते में खाने के लिए। पर बेचारे ने इसे छुआ तक नहीं। वह फिर छाती पीटने लगी।

– माई तू क्या कर सकती है? ये तो मनुष्य के बस में नहीं। तू बता काल के आगे किसी चली है।

– दो दिन से घर में एक दाना नहीं था। तभी मेरा लाडला बोला था रानीबहल जाकर मजदूरी करने की।

– मजदूरी करने की?

– कहाँ शरण लिया था वो?

एक ने छप्पर की ओर इशारा किया। दूसरा तपाक से बोला, 'नहीं छप्पर में घुसा नहीं था। हमें वो मरा मिला था। वहाँ, जब तूफान थमा तो वो मर चुका था।'

– वो मरा कैसे? सांप डसने से या बिजली गिरने से?

– यह सब किस्मत है माई। – एक अधेड़ स्त्री बोली।

वर्ना छप्पर में घुसने पर भी क्यों मरता। बुढ़िया कुछ न समझ पाई पर आदमियों को खतरे की घंटी सुनाई पड़ गई। जनानी अभी सच उगल देती। थानेदार ने चेतावनी देने के लिए सिपाही तक को भेजा था। मुँह पर ताला लगाने को कहा था। एक ने अधेड़ से कहा, 'काकी तू घर जा।'

कुछ लोग आगे आये और बोले, 'परम की माँ, वो यहाँ पड़ा था। तूफान के बाद वह हमें मिला था।

– वह मरा कैसे?

– कौन जाने....बिजली गिरने से या साँप डसने से.. ..रति कहती है सुबह होने से पहले अंतिम संस्कार होना चाहिए, सो हमने कर दिया।

बुढ़िया ने आकाश की ओर हाथ उठाए और बोली, ''जीते रहो बेटों!'' सब आदमी चुप खड़े थे।

– थोड़ा भात लेगी माई?

– भात की खातिर तो मेरे परम ने घर छोड़ा। कैसे ले सकती हूँ मैं भात।

– थोड़ा सा गुड-चूडा ले ले। नहीं तो हमारे गाँव का अपमान होगा।

एक गुड़ चूड़ा ले आया। दूसरे ने बच्ची को दो पके कैंद के फल थमा दिए। बुढ़िया ने परम की लाठी और थैला उठाया। उसने वही राह पकड़ी जिस पर चलकर उसका परम वहाँ पहुँचा था; वो फिर चीखी, 'हाय परम! हाय मेरे बच्चे!'

परम के कातिल फुसफुसाए– क्या जरूरत थी उसे 'धिकारो' शब्द मुँह से निकालने की...! ■

(प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी द्वारा बांग्ला कहानी के अंग्रेजी रुपान्तर का सुनंदा दीक्षित द्वारा हिन्दी अनुवाद। सुनंदा दीक्षित पेशे से स्वतंत्र टेलीविजन पत्रकार हैं और दिल्ली में रहती हैं। साभार : अंग्रेजी बूधन, अंक 2002 से)

हिन्दी की प्रख्यात लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के प्रसिद्ध उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' के कुछ अंश।

अल्मा कबूतरी

■ **मैत्रेयी पुष्पा**

●●●

कदमबाई जानती है कि मलिया काका ही एक ऐसा आदमी है, जो पुलिस से या लैसंसशुदा ठेकेदारों से पिटने के लिए डेरों पर रह जाता है।

वह कहा करता है– मैं रोटी का टुकड़ा हूँ कदम, पुलिस के आगे फेंकने के लिए। पुलिस आए और खाली चली जाए, वह दरोगा-सिपाहियों की तौहीन है। वे गुर्राने लगते हैं फिर। मरे हुओं को ही फिर से मारने लगते हैं। कहो, आपस में ही एक-दूसरे का सिर फोड़ने लगें। लाचार आदमी...मुजरिम लेकर थाने की चौखट पर न चढ़ पाए तो बूटवर्दी का पराक्रम क्या?

सो मलिया नजराना हो गया। दरोगा बस्ती में आया है, कायर आदमी। मलिया मालिक-मालिक कहकर पाँवों में लिपट गया, तब कहीं जाकर उसकी बाँहों का खून हरकत में आया।

मलिया शिकार बन जाता है। ऐसा शिकार जो खुद ही शिकारी के पास आ जाए। जिसकी ओर निशाना न साधना पड़े, खुद ही निशाने को साध ले। बस शिकारी फूला नहीं समाता फिर।

मलिया पुराना है, अनुभवी है, जानता है, मोटी तोंदवाला दरोगा उस इकहरी हड्डी वाले फुर्तीले बूढ़े को छू नहीं सकेगा। मलिया सिपाहियों से छुआ-छुअ-ऊअल-सी खेलने लगा।

मलिया ज्ञानवान है, जानता है कि सिपाही दरोगा के पास माना कि दिलेरी नहीं होती, पर थाने की कलम तो होती है, दरबारी रजिस्टर तो होता है। ये दोनों चीजें कमजोर से कमजोर, कायर से कायर आदमी के हाथ लग जाएँ तो मिनटों में बड़े-से-बड़े बहादुर की बहादुरी कील दें।

मलिया हवा का रुख पहचान गया। चतुराई और अटकलें लगाकर सिपाहियों को दौड़ा रहा था। उनकी साँसें उखाड़ रहा था। थका-माँदा सिपाही माँ की गाली देकर बैठ गया।

मलिया अंतर्यामी की तरह सिपाही के मन की हालत जान गया, अपनी बूढ़ी कड़ियल बाँहें हवा में भाँजता हुआ जवाबी गालियाँ देने लगा। कबूतरी बोली की गालियों को सिपाही लोग रजिस्टर में लिख लेते हैं, उन्हीं के हिसाब से सजा बढ़ाते जाते हैं। क्योंकि कबूतरा भी ऐसी गालियाँ थोक में बरसाते हैं, जिनमें से एक पर ही फौजदारी हो जाए। माँ का कूँदा...अर्थ जान गई पुलिस। सिपाही लोग खूँखार कुत्तों से खोंखियाए। मलिया फसल के बीच खड़ा मुस्कुरा रहा था। फिर वह यकायक पेट पकड़कर हँसने लगा। बूढ़ी हँसी खेतों पर फैल गई। दरोगा ने हुक्म दिया–बूढ़े को गोली मार दो।

पुलिस फसल रौंदने लगी।

नया रंगरूट सिपाही था, बोला–एक गोली बरबाद करो या हवालात में ले चलो, सो बेकार है, यह साला यहीं कैद से बदतर जिंदगी बिता रहा है।

बच्चे गाँव से दूर पड़े घूरों को कुरेद आए। कुछ चिथड़े उखाड़ लाए। उन्होंने वे चिथड़े डेरों के भीतर माँ-काकियों के पास फेंक दिए। नहीं देखा कि वे चीरे गंदगी में लिथड़े हैं, महावारी के खून में...। फायदा भी क्या था, दूसरा सहारा न था। माँ-काकियों के नंगे बदन रह-रहकर आँखों में छा जाते।

मलिया फिर हँसा। नए सिपाही को मालूम नहीं कि कबूतरा क्यों पकड़ा जाता है? जान जाएगा, अभी इसकी लंबी नौकरी पड़ी है।

–गोली नहीं मारेंगे, जिंदा पकड़ेंगे साहब। सिपाहियों ने ताल ठोकी। वे मलिया को दबोचने के लिए आगे बढ़े, बढ़ते रहे–मलिया निर्जीव पथरीला-सा आदमी बिजूका की तरह अड़ा खड़ा रहा था। खैर उसकी लंबी और कड़ी देह को बंदूक के बट मार-मारकर वहीं बिछा दिया। ताज्जुब कि वह फिर भी नहीं मरा। खुद नहीं मरा, पाँवों से किसी

का ठंडा शरीर टकराया।

जमुनी! वह समझ गया।

होंठों का रेशा-रेशा काँपने लगा। स्वर्गीय छोटे भाई की बेटी जमुनी भतीजी, जिसके पाँव पूजने का विधान है, ताऊ के पाँवों में पड़ी दाह-संस्कार की बाट देख रही है! तीन साल से वीरदेवता पर पान और बेर के पत्ते चढ़ाकर संतान माँग रही थी। ठेकेवालों ने भी हमले के लिए कौन-सा दिन चुना!

कदमबाई क्या, डेरों की सारी औरतें डेरों में ही छिपी रहीं। मलिया को पुलिस बाँध ले गई। डेरों पर मर्दजात कि पुख्ता आदमी का निशान न रहा। सरमन मुखिया पेड़ से बाँधकर पिटा था, घायल हो गया।

कदमबाई कैसी तो डरावनी हँसी हँसी थी—भजनी जिज्जी, हमारे पास न मरों को कफन, न जिंदों को लत्ता। दो घंटे में ही तबाह हो गए।

औरतें लाश कैसे फूँकें? धर्म में मनाही है।

जिस खेत में जमुनी पड़ी थी, उसका मालिक किसान डेरों पर आया। गालियाँ देता रहा। कहता गया कि कबूतरा साले लुगाइयों के संग मौज करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं। मरते ही उसकी मिट्टी को पहचानते तक नहीं। सरमना...तू नहीं उठा सकता तो अपनी लुगाई को भेज। फ़सल खराब हो रही है मादरचो...रपट करूँगा कि तुमने औरत मारकर फेंकी है।

कदमबाई बाहर को उझकी। होठों में बुदबुदाई-रे... रपट से कौन-सा नया कहर टूट पड़ेगा? सब तो गुजर गया। लाठी-कुल्हाड़ी चलाने में माहिर हमारे मर्द घायल ढोर से लाचार और हम जैसी औरतें नंगी गोपिका-सी छिपने को बेबस...। हरामी, हम अपनी बेटियों को उघड़ी योनि और बेपर्दा छातियों के कारण उन्हें अँधेरे में पटके पड़े हैं। अगर भीखम गोमता और राणा गुदड़े-चिथड़े बीनकर अब तक आ गए होते तो हम तुझे पहले फूल का मद पिलाकर मार न डालते और जमुनी के संग ही फूँक देते।

—कज्जा किसान, खाया-पीया आदमी, कपड़े-लत्ते से लैस नैम-धरम की बात न करेगा तो कौन करेगा? अरे कज्जा, जिसके पास जिंदा आदमी के रहने का ठिया-ठिकाना नहीं, रोजमर्रा के जरूरती कामों को ठौर नहीं, उनसे मरघट-मसान बनाने की उम्मीद जोड़ रहा है!

बच्चे गाँव से दूर पड़े घूरों को कुरेद आए। कुछ चिथड़े उखाड़ लाए। उन्होंने वे चिथड़े डेरों के भीतर माँ-काकियों के पास फेंक दिए। नहीं देखा कि वे चीरे गंदगी में लिथड़े हैं, महावारी के खून में...। फायदा भी क्या था, दूसरा सहारा न था। माँ-काकियों के नंगे बदन रह-रहकर आँखों में छा जाते।

कदमबाई उस दिन राणा के पुरुष जन्म पर खुश हुई थी—मर्द की देह नंगी नहीं मानी जाती।

डेरों पर सबसे ज्यादा उम्र की औरत भजनी, जिसे नंगे होते-होते नंगे रहने की आदत पड़ गई थी, उन चिथड़ों को धोने-सुखाने लगी। सरमन जान-बूझकर आँखें मींचे पड़ा रहा था।

कदमबाई कैसी तो डरावनी हँसी हँसी थी—भजनी जिज्जी, हमारे पास न मरों को कफन, न जिंदों को लत्ता। दो घंटे में ही तबाह हो गए।

कदमबाई वह दिन आज भी याद करती है तो थर्रा जाती है— सरमन की औरत और वह जमुनी को खेत से खींच लाई थीं। राणा की बाँहों में मरा हुआ बच्चा।... चिथड़े-चीर लपेटे हुई औरतों ने काँटेदार सूखी झाड़ियाँ, सूखा गोबर और रोटी के लिए जोड़ा तमाम ईंधन डालकर जमुनी को उसके बेटे के संग फूँक डाला था। कुछ कसर रह गई, खेतों में से मद उखाड़कर चिता पर उड़ेल दिया।

होली का पर्व...

●●●

बच्चों की नजर पड़ी—मलिया काका!

मलिया कि सिपाही? खाकी कमीज और पैन्ट पहनकर आया था मलिया।

सारे बच्चे झुक आए। गोरकी जैसी छोटी-बड़ी छातियोंवाली लड़कियाँ अपनी कोहनियों का पर्दा किए डेरों में दौड़ीं।

मलिया ने एक-एक बच्चे, एक-एक औरत को गिनना चाहा। जमुनी को छोड़कर सब थे। भूखे-नंगे ही सही, पर जिंदा थे। मलिया की आँखों में उथल-पुथल-सी मची थी। बोला-थाने पर जाकर ऐसी बातें सुनता हूँ कि डेरे से ज्यादा जी घबराने लगता है। पुलिस के लोगों के पास बस्तियों में आग लगवाने का ठेका है। मैंने सोचा मैं जमुनी को फूँक नहीं पाया, उससे पहले ये डेरे न फूँक डालें।

मलिया सबको पाकर अपनी टीसें भूल गया। महीन झुर्रियों में चिंता तो थी, पर शोक नहीं था। जमुनी के लिए उसी दिन रो लिया था। फिर समय ही नहीं मिला। सिपाहियों ने चैन ही नहीं लेने दिया। थाने का माहौल बनाने के लिए छेड़छाड़ करते ही रहे।

अभिभूत-सा बोला—हमारी जमुनी रोने के लिए नहीं, यादों में बस जानेवाली लड़की थी।

मलिया ने बाँहदार कमीज से अपनी आँखें पोंछ डालीं। फिर आँसू भरकर मुस्काया। कहने लगा—हवालात में डालकर दरोगा सोच रहा होगा, हमें निठल्ला करके बिठाए रहेगा। उसे यह मालूम नहीं कि जिसके अपने लोग भूखे-नंगे हों, वह बेकार कैसे बैठ सकता है? कानूनी लोगों से हम डरते तो अब तक मर गए होते।

कदमबाई क्या, सब जानते हैं कि मलिया जब हवालात से लौटता है तो ऐसी ही बातें करता हैं, जैसे जंग जीतकर आया हो। अपनी बहादुरी के किस्से सुना रहा था—राणा और भीखम पास सरक आए।

भीखम बोला—काका, क्या काम किया था?

—बेटा, पिटे थे। दो सिपाहियों को इसी काम में खपाए रखा। वे हमें पीटते और थककर गिर पड़ते। डूटी बजाना आसान काम नहीं। उन्होंने दरोगा से अरज की—साब, उस कबूतरा को भगा दो। उसकी कमर पर लात मारते-मारते हमारे टखने की हड्डी चोट खा गई है। पाँव सूज गया। हरामी की कमर है कि सिल? रोशनसिंह ने मुँह पर थप्पड़ मारे सो उसकी कलाई में मोच आ गई। साले का चेहरा हाड़मांस का नहीं, लोहे में ढला हुआ है।

रात को पीना-पिलाना चला। सिपाही लोग अपनी चोटों का दर्द भूलकर बच्चों की नींद सो गए। उनकी भोली साँसें सुनाई दे रही थीं। हमने सोचा चौबीस घंटे बाद बिदाई तो होगी ही, डेरों पर क्या ले चलें? नशे की नींद में आदमी के कपड़े क्या, खाल उतार लो। खैर हमने तो खुंटी पर टँगी लुंगियाँ, झोले में रखी कमीजें ले लीं। एक सिपाही ज्यादा धुत था, पैन्ट पहनकर ही सो गया, उसकी पैन्ट खींच ली।

चौकीदार जागा हुआ था। उसके पाँव पकड़ लिए और कहा—भइया, हमारी जनानी नंगी बैठी होगी, तुम हमारी दुनिया के मालिक।

मालिक जैसा वजनी बोल, चौकीदार सिपाहियों से ज्यादा नशे में आ गया।

हमने फिर कहा—मालिक, रिहाई तो होगी ही, तुम्हारे हाथों ही हो जाए। आदमी को सदा दूसरों के कहने से बाँधते-रोकते रहते हो, आज अपनी मर्जी से आजाद करके तो देखो, भीतर ही भीतर नया रुतबा पैदा हो जाएगा।

चौकीदार बादशाह हो गया, बोला, "च् च् च्! इन दूशासनों को सिपाही दरोगा की पदवी किस हरामी ने दे डाली? ये साले तो चौकीदारी करने के काबिल नहीं।"

अपने मालिकों पर थूकने का मौका कितनों को मिलता है? उसने इसी खुशी में कुछ पगड़ियाँ मलिया के सामने धर दीं।

मलिया को जमुनी याद आई—मालिक, हमें देर हो गई! पर अब ये लत्ते मरे से ज्यादा जिंदा लोगों के काम आएँगें। तुम्हारा हौसला अकारथ नहीं जाएगा।

डेरों पर उस दिन कपड़ों की बहार आ गई। कदमबाई, लछमन की बहू, भजनी और सरमन की औरत खाकी रंग के घाघरे पहनकर गुड़-महुआ की उधारी करने पनारीगाँव के तेली के पास गईं।

खमीर उठने में चार-पाँच दिन लगेंगे, तब तक क्या खाएँगे।

भजनी घिसे दाँतों की बच्चों जैसी हँसी छोड़ती हुई बोली—आस बिसवास।

मलिया थाने से लौटा था, जोश में था। मार खाई थी तो रोटियाँ भी खाई थीं। भूख-प्यास की बात हवा में उड़ाने लगा।

लेकिन एक जगह आकर मलिया का ईमान डिग गया। मरा बैल और बच्चों की आँखें संग-संग याद आईं। प्रभुदयाल चौबे बैल खींचने चमार को बुलाएगा नहीं, क्योंकि अब वे आते ही नहीं। वह लपकता हुआ गया, चौबेजी से खेत पर जाकर बोला, "महाराज अब आदमी क्या, जमाना क्या? काम और कामगरों की कहानियाँ रह गई हैं।"

चौबे पंडित आदमी, भूखे की आँखों में इच्छा पढ़ ली। आवाज सूखे पत्ते से हलकी है।

"बैल के संग, दस रुपया दूँगा मलिया।"

मलिया की आँतों में बड़े-बड़े काँटे उग आए। अँधेरे में कौन देखता है—बैल खींचकर ले जाऊँगा। चमार तो खुश ही होंगे कि कबूतराओं से ऊँचे हो गए, यह बात सिद्ध है।

...मगर बैल!

बैल हो कि गाय, काटे पीछे सब मांस हो जाते हैं। दस रुपया में नोंन-मिर्च और तेल आ जाएगा।

डेरे पर रात भर जागरण हुआ।

कदमबाई को नया ज्ञान हुआ, कज्जा लोग भी पूरे बाजीगर...एक भूखों मारेगा तो दूसरा लालच देगा।

"तू क्या-क्या सोचती है कदम? बैल तो छप्पन भोग हो गया। पेट में जाते ही कज्जा लोगों को ललकारने लगा। देख ले, दूलन खूब गालियाँ बक रहा है। बहुत दिन बाद पेट भरा है न?" मलिया कहकर हँस दिया।

कदमबाई की दुनिया में मंसाराम कहाँ हैं? होते तो यह घड़ी देखनी पड़ती? मन में कैसी-कैसी दुनिया रचती रहती है। चाहने से होता क्या है? ■

(पृष्ठ : 46-50, वर्ष 2000। यह उपन्यास राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है। 'बूधन' अनुमति के लिए लेखक एवं प्रकाशक का आभारी है।)

विकास पथ पर रेंगते आदिवासी 'सोम्पेन'

स्वामी प्रसाद
■
विजय लक्ष्मी पाठक

समाज का एक बड़ा भाग निरंतर भौतिकवाद के मकड़जाल में उलझता जा रहा है। विश्व मंच पर पर बढ़ती जनसंख्या पर अंकुश लगाने के नित नए-नए संसाधनों एवं कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जा रही है। किन्तु इन सबसे भिन्न हमारे विविधतापूर्ण समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो निरन्तर संख्या में कम होता जा रहा है, भौतिकता से उसका दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है, उन्हें युगों पूर्व के स्वछन्द, स्वतन्त्र, घुमक्कड़ जीवन में ही आनंद की असीम अनुभूति होती है। ये लोग हैं, अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह के आदिवासी-'सोम्पेन'।

अण्डमानी लोग ओंगी, जरावा की नीग्रिटो वर्ग के आदिवासी जनजाति के हैं। उनके ठीक विपरीत सोम्पेन मंगोली वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। सोम्पेन अत्यन्त भीरु व शर्मीले होते हैं। ये लोग किसी अन्य व्यक्ति की जो उनकी प्रजाति का न हो, नजर पड़ते ही गायब हो जाते हैं। सोम्पेन ग्रेट निकोबार द्वीप की नदियों के किनारे घने जंगलों में छिपकर रहते हैं। इनकी झोपड़ियाँ घने जंगलों में बनी होने के कारण दूर से दिखाई नहीं देती हैं। इन्हें कृषि कार्य का ज्ञान नहीं है। सोम्पेन लोग मुख्यतया नारियल, केले (जंगली) केवड़ा, एवं कंदमूल के अलावा मछली, जंगली सूअर, छिपकली आदि से अपना जीवनयापन करते हैं। इन्हें शहद निकालने की अद्भुत कला आती है, जिसका उपयोग वे अपने भोजन में करते हैं। छत्ते से मधुमक्खियों को बिना भगाये ही ये लोग शहद निकाल लेते हैं। मधुमक्खियाँ इन्हें न काटें इसके लिए एक विशेष प्रकार की वनस्पति की पत्तियों का रस अपने शरीर में रगड़ लेते हैं। जिससे मधुमक्खियाँ इन्हें काटती नहीं हैं बल्कि इनके आसपास गुनगुनाती रहती हैं। इन्हें माचिस तथा आग उत्पन्न करने के आधुनिक तरीकों का ज्ञान नहीं है। पत्थरों को आपस में रगड़कर आग उत्पन्न करने का प्रारम्भिक तरीका ही उनकी ज्ञान की सीमा का द्योतक है। पानी पीने के लिए बाँस से बने बर्तनों का प्रयोग करते हैं तथा अन्य उपयोग में आने वाले बर्तनों का निर्माण सोम्पेन पेड़ों की छालों से करते हैं।

सोम्पेन पुरुष लंगोट व महिलाएँ पेड़ों की छाल का पेटीकोट पहनती हैं। सोम्पेन की जनसंख्या में निरंतर कमी होती जा रही है। इनके शर्मीले स्वभाव तथा बाहरी लोगों से भय के कारण, जो भय संभवतः उस समय से चला आ रहा है जब मलाया के समुद्री डाकुओं द्वारा उन्हें गुलाम के रूप में दक्षिण पूर्व एशिया में बेचा जाता था, प्रशासनिक इकाइयों के लिए इन आदिवासी जनजातियों से सम्पर्क स्थापित करना संभव नहीं हो पाया है। परिणामतः इनकी प्रमाणिक जनगणना संभव नहीं हो पा रही है।

शासकीय संस्थान की शाखा 'यांत्रिक' ने इन आदिवासी 'सोम्पेन' लोगों के बीच मैत्री संबन्ध जोड़कर तथा इनसे सम्पर्क कर इनको प्रशासनिक इकाइयों के समीप लाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रशासनिक परियोजना के तहत ग्रेट निकोबार में पूर्वी तट से पश्चिमी तट तक एक सड़क निर्माण कराया गया जिसमें जंगलों के बीच शिखर स्थापित करना अनिवार्य किया गया, जो 'सोम्पेन' बस्तियों के समीप था। प्रारंभ में सोम्पेन अपने पड़ोसियों से दूर भाग जाते थे, किन्तु जब विश्वास हो जाता है कि उन्हें अपने इन पड़ोसियों से कोई हानि नहीं हो रही तो साहस करके वे कुछ क्षण के लिए खुले में आ जाते हैं।

'यांत्रिक' संस्था के कुछ कर्मचारी अपने इन शर्मीले पड़ोसियों के लिए, उन स्थानों पर जहाँ सोम्पेन अक्सर आया करते थे, कुछ उपहार व वस्तुएं छोड़ जाते। सोम्पेन लोग बदले में नींबू व शहद पड़ोसियों के लिए छोड़ जाते हैं। इस प्रकार वस्तु विनिमय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है। कुछ प्रयासों से सोम्पेन लोगों से सम्पर्क की प्रक्रिया प्रारंभ तो हुई है, किन्तु उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई जितनी होनी चाहिए। शायद वे अपनी संस्कृति को अक्षुण रखना चाहते हैं। यही कारण है कि सोम्पेन बच्चों के लिए संस्था द्वारा खोला गया विद्यालय अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पा रहा है। ■

(डॉ० स्वामी प्रसाद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हमीरपुर में समाजशास्त्र विभाग में प्राध्यापक हैं।)

(डॉ० विजय लक्ष्मी पाठक, समाज कार्य विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी में सह-प्राध्यापक हैं।)

यह पत्र पूर्व प्रधानमंत्री श्री एच. डी. देवगौड़ा को 'अखिल कर्नाटक कंजरभाट समाज' की ओर से उन्हें अनुसूचित जाति एवं जनजाति सूची में सम्मिलित किए जाने के विचारार्थ लिखा गया है। ''अखिल कर्नाटक कंजरभाट समाज''-भाट लोलयार (Lolyar) साँसी, करवन (Karwan), भाँतू (Bhantu), छारा (Chhara), जन्‌जनिये (Zanzaniye), बेदकूट (Bedkut) साइसमल (Saisemal) और नट (Nat) तथा गड़क-वेड़गरी (Gadag-Betgeri) जनजातियों की एक संस्था है।

कंजरभाट की ओर से प्रधानमंत्री को एक पत्र

हम अखिल कर्नाटक कंजरभाट समाज की ओर से ऊपर वर्णित विषय पर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

कंजरभाट, घुमन्तू समाज की सबसे पिछड़ी जातियों में आती है। हम कर्नाटक के धारवाड़ (Dharwad) बेलगाँव, बीजापुर, चित्रदुर्ग जिलों में बसते हैं। एक स्थान पर हम कम ही समय के लिए टिकते हैं।

कंजरभाट, भाट, लोलयार, सांसी, मुखेर (Mukher), करवन, भाँतू, छारा, कंजरी (Khanzari) जन्‌जनिये, बेदकुट, सैसमल और नट जैसी जनजातियाँ भारत में घुमन्तू रही हैं।

हमारे पूर्वज राजस्थान के थे। जब युद्ध में महाराणा प्रतापसिंह पराजित हुए, तब हम देश के दूसरे हिस्सों में जा बसे। हम लागों ने बहुत से राज्यों की यात्राएँ कीं। उदाहरण के लिए कर्नाटक, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मद्रास, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश इत्यादि। हम

· गरीब और घुमन्तू होने के कारण हम लोगों में शिक्षा का अभाव है। हमारी जाति का एक भी व्यक्ति आज तक सरकारी अफसर नहीं बना। पीढ़ी दर पीढ़ी, हम लोगों का जीवन अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के संघर्ष में ही गुजर जाता है।

लोग अत्यंत गरीबी में जीते चले आ रहे हैं। जीवनयापन के लिए हमारे लोग गाँव वालों से अनाज इकट्ठा कर उसे घोड़ों व गधों पर लाद कर दूसरे गाँव में बेचा करते थे। ब्रिटिश राज में उन्हें पहचान पत्र दिये गये ताकि वह गाँवों के मुखिया से अनाज प्राप्त कर सकें। लेकिन आजादी के बाद भारत सरकार ने उन्हें किसी निश्चित स्थान पर बसाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

शिक्षा

गरीब और घुमन्तू होने के कारण हम लोगों में शिक्षा का अभाव है। हमारी जाति का एक भी व्यक्ति आज तक सरकारी अफसर नहीं बना। पीढ़ी दर पीढ़ी, हम लोगों का जीवन अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के संघर्ष में ही गुजर जाता है। ऐसी स्थिति में अपने बच्चों को शिक्षा दे पाना हमारे लिए लगभग असंभव है। हम अब भी जनजातीय जीवन जी रहे हैं। हमारी जाति के बहुत से युवा अपनी शिक्षा अधूरी छोड़कर मजदूरी में लग गये। हमारी जाति शैक्षिक रूप से अत्यंत पिछड़ी है।

रोजगार

शिक्षा के अभाव के कारण हमें सरकारी नौकरियाँ नहीं मिलतीं। आज तक हममें से कोई भी सरकारी अफसर नहीं बना। शहरों में रहने वाले कुछ परिवारों के लोग प्राथमिक/माध्यमिक शिक्षा ले पाये हैं। लेकिन उन्हें भी रेल यातायात निगम में चौथी श्रेणी की नौकरियाँ ही मिल पाईं। पूरे राज्य में हमारी जाति के कुल दस अध्यापक हैं, कुछ निजी क्षेत्र में कार्यरत है। बहुत से शिक्षित युवा अब भी बेरोजगार हैं।

आर्थिक दशा

हमारी घुमन्तू जाति की आर्थिक स्थिति दयनीय है। दो जून की रोटी जुटाने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। हमारे पास न नौकरियाँ हैं, न अपने घर और न ही खेतीबाड़ी के लिए अपनी जमीन है। सरकार द्वारा दी जा रही सुविधाएँ हम तक कभी नहीं पहुँची।

राजनैतिक दशा

हम लोग राजनीति में हिस्सा नहीं लेते। वोट डालते हैं पर राजनीति में कोई अहम भूमिका नहीं निभाते। राजनीति के प्रति उदासीन होने के कारण भी हम लोग

पिछड़ गए हैं।

भाषा

हमारी अपनी बोली है पर लिपि नहीं है। हमारी भाषा लम्बानी, कोंकणी, हिन्दी और मराठी का सम्मिश्रण है। यह एक मिश्रित (pidgin) भाषा है जिसे हम घर में ही बोलते हैं।

शादी-ब्याह

हम लोगों में दहेज प्रथा नहीं है। वधू की कीमत देकर उससे शादी की जाती है। दूसरी जनजातियों की तरह हम भी भूमि के उपासक हैं।

कला

हमारे लोग कुशल गायक हैं। हमारे अपने गीत और नृत्य हैं। हमारे युवा हॉकी के अच्छे खिलाड़ी हैं। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी खेला है। पर उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है।

ब्रिटिश राज के समय से ही हम लोग हॉकी, फुटबॉल, वॉलीबॉल, कबड्डी और दौड़ में अच्छे रहे हैं। राजकुमार जे बागडे (Bagade) ने भारतीय हॉकी टीम की तरफ से जर्मनी, स्पेन, हालैण्ड, दुबई, दक्षिण अफ्रीका और मलेशिया के विरूद्ध मैच खेले। बेनू भाट ने श्री लंका में हॉकी खेली। हमारे युवाओं में बहुत से अच्छे खिलाड़ी हैं। उन्हें प्रोत्साहन और दिशा देने की आवश्यकता है। ये लोग बेरोजगार भी हैं।

न्याय

न्याय देने का काम हमारी समुदाय समिति करती है। हमारी जाति की सभी समस्याओं का न्यायिक समाधान हमारी समुदाय समिति करती है। पारिवारिक मतभेद, वैवाहिक समस्याओं और झगड़ों इत्यादि का निपटारा यही समिति करती है। हमारी जाति के नेताओं का फैसला अंतिम माना जाता है। विवाद से जुड़े दोनों पक्ष बिना किसी विरोध के इस फैसले को मानते हैं। पिछली तीन पीढ़ियों से चली आ रही न्याय की यह प्रणाली आज भी कायम है।

वेशभूषा

हमारे समाज की लड़कियाँ पूरी आस्तीन की कमीज पहनती हैं। लोहे की बड़ी-बड़ी चूड़ियाँ और चाँदी के हार उनके आभूषण हैं। लम्बानी पोशाक से मिलता-जुलता हमारी औरतों का पहनावा है।

खानपान

हम लोग माँसाहारी हैं। हम माँस, मुर्गा और सूअर खाते हैं। यात्रा के दौरान माँस खाने की मनाही है। गाँव के होटलों में हमारा प्रवेश-निषेध है। हम लोग गाँव के कुओं से पानी भी नहीं ले सकते।

घेरेबन्द बस्ती

ब्रिटिश सरकार ने हमें अपराधी जनजाति के तहत 1909 में अधिसूचित कर दिया। हम लोगों के परिवारों को पकड़कर कंटीली तारों के घेरों में डाल दिया गया। जिन जातियों को इन घेरों में डाल दिया गया था उनमें कंजर भाट (Kanzarbhat), हरण शिकारी, बंजारा, छप्परबंध (Chapparbandh), पारधी, कैकाड़ी (Kaikadi) और कोरवार (Korwar) शामिल हैं। अंग्रेजों ने इसे सेटलमेंट का नाम दिया और हमारी देखभाल के लिए एक अंग्रेज अफसर को भी नियुक्त किया। इस अफसर की आज्ञा के बिना बस्ती से आना जाना नहीं हो सकता था। रात आठ बजे से पहले हर हाल में बस्ती में वापस लौटना होता था। ब्रिटिश सरकार ने 1942 में कागज की मिलों और रेलवे में हमें छोटी मोटी नौकरियाँ देकर हमारी हालत में मामूली सा सुधार किया। हमारी शिक्षा, सफाई और स्वास्थ के लिए अब अलग-अलग अफसर थे। पुनर्वास बस्तियों में रहने वाले कोरवार, पारधी, बंजारा और घंटीचोर (Gantichor) जातियों को अनुसूचित जातियों और जनजातियों की सूची में शामिल कर लिया गया है। लेकिन कंजरभाट जाति को इस सूची से बाहर रख कर सरकार ने हमारे साथ अन्याय किया है। अतः हमारी जाति के कल्याण के लिए इसे अनुसूचित जाति व जनजातियों की सूची में शामिल किया जाना चाहिए।

इस संबंध में बहुत से ज्ञापन सरकार को दिए जा चुके हैं पर सरकार की तरफ से हमें कोई उत्तर नहीं मिला है।

हम माननीय प्रधानमंत्री जी से सविनय निवेदन करते हैं कि वह हमारे समाज के कल्याण और विकास के लिए हमें सुविधाएँ दिलाएँ और हमारे समुदाय को अनुसूचित जातियों व जनजातियों की सूची में शामिल करवाएँ।

धन्यवाद,

आपका आज्ञाकारी,

जे. वी. बागड़े, सचिव,

कंजरभाट गली, गांधी नगर, गंडगे 582101,

जिला धारवाड़ (Dharead) कर्नाटक।

■

अनुवाद : सुनंदा दीक्षित

(साभार : अंग्रेजी बूधन, अंक 2002 से)

अमरेंद्र किशोर विगत कई वर्षों से आदिवासी एवं पर्यावरणीय विषयों पर निरन्तर लिखते रहे हैं। संप्रति : देश के निर्धनतम आदिवासी जिलों की स्थिति को लेकर एक शोधकार्य से संबद्ध हैं।

कैलाश साँसी की मौत रोज होती है

■ अमरेंद्र किशोर

साँसी–मतलब अपराधी, जन्मजात अपराधी, जिनके पूर्वज अपराधी थे और जो आज भी अपराधी हैं। जी हाँ, साँसी एक जरायमपेशा कौम है। जिसके बारे में दिल्ली पुलिस का आरोप है कि महानगर की आपराधिक गतिविधियों में साँसी समुदाय की बहुत बड़ी भूमिका होती है। अतः अपराध नियंत्रण के लिए दिल्ली पुलिस साँसी बस्तियों में ज्यादा सतर्क रहती है। पुलिस की यही सतर्कता उसके (दिल्ली पुलिस) मन में लालच भर देती है। चूँकि परिस्थितिवश कई साँसी शराब बेचने का धंधा करते हैं तो उन्हें अपनी कमाई का बड़ा 'हिस्सा' स्थानीय पुलिस को देना पड़ता है। आपराधिक घटनाओं के लिए तो पुलिस थानों में उनकी हाजिरी अंग्रेजों के जमाने से ही लगती रही है। ऐसा आज भी होता है। कहने का मतलब यह है कि इनके प्रति पुलिस का रवैया उतना ही क्रूर और अमानवीय है जितना अंग्रेजों के जमाने में था। पुलिस की यही कोशिश होती है कि पहले तीन–चार छोटी घटनाओं में किसी साँसी युवक को नामजाद किया जाए। इस स्थिति में नामजाद युवक पुलिस के चुंगल में होता है और अपनी कमाई का अच्छा खासा हिस्सा पुलिस को पहुँचाता है। यदि वह विरोध प्रकट करता है तो उसे किसी बड़ी घटना में पुलिस गिरफ्तार कर लेती है।

कानून की नजर में गिरफ्तारी प्रताड़ना नहीं है लेकिन पुलिस किसी साँसी युवक को गिरफ्तार कर चुप नहीं बैठती। मोहन गार्डन, उत्तम नगर के 28 वर्षीय कैलाश की कहानी साँसी समाज के प्रति दिल्ली पुलिस के रवैये का खुलासा करती है। पिछले साल 22 जुलाई को कैलाश के घर में चार पुलिसकर्मी अचानक आए और वे कैलाश को जबरन पुलिस थाने ले गए। कैलाश की पत्नी क्रांति देवी ने उन पुलिसवालों का विरोध भी किया तो पुलिसवालों ने यही कहा कि 'तू साँसी है और अपने बारे में जो कुछ भी कहना है हवालात में कहना'। क्रांति देवी ने बताया कि

पुलिसवालों ने कैलाश के साथ कैसा बर्ताव किया, पता नहीं लेकिन 26 जुलाई, 2000 की रात कैलाश ने जेल में ही दम तोड़कर साँसी जन्म से मुक्ति पा ली। क्रांति देवी का आरोप है कि उत्तम नगर थाना के हैड कान्सटेबल महेन्द्र और अन्य तीन पुलिसकर्मी कैलाश के हत्यारे हैं। लेकिन आज भी कानून की वर्दी पहने कैलाश के हत्यारे कानून की रक्षा करने का ढोंग रच रहे हैं।

पुलिसवाले कैलाश को घर से थाने मारते-पीटते ले गए और उस पर धारा 107/151 का झूठा मुकदमा दर्ज किया। फिर कोरे कागज पर कैलाश के अँगूठे का निशाना भी लिया। इसके बाद उत्तम नगर थाना के पुलिसकर्मियों ने कैलाश को छोड़ने के लिए क्रांति देवी से एक हजार रुपये की माँग की। अगले दिन रिश्वत नहीं मिलने के कारण कैलाश को अदालत में पेश किया गया, जहाँ से उसे जेल

भेज दिया गया। पुलिसवालों ने कैलाश के साथ कैसा बर्ताव किया, पता नहीं लेकिन 26 जुलाई, 2000 की रात कैलाश ने जेल में ही दम तोड़कर साँसी जन्म से मुक्ति पा ली। क्रांति देवी का आरोप है कि उत्तम नगर थाना के हैड कान्सटेबल महेन्द्र और अन्य तीन पुलिसकर्मी कैलाश के हत्यारे हैं। लेकिन आज भी कानून की वर्दी पहने कैलाश के हत्यारे कानून की रक्षा करने का ढोंग रच रहे हैं। कैलाश ने ऐसा कौन सा बड़ा अपराध किया था जिसकी सजा मौत

दिल्ली की एक साँसी बस्ती (छाया : लेखक)

थी, अनरोई मौत, अनजानी मौत। जिस मौत पर किसी ने मातम नहीं मनाया। किसी ने यह नहीं पूछा कि जेल में कैलाश की मौत कैसे हुई? दुर्भाग्य की बात यह है कि न तो मानव अधिकार आयोग में साँसियों की मौत के सौदागरों के खिलाफ गुहार होती है, और न ही कोई स्वयंसेवी संगठन पुलिस के खिलाफ कुछ कहने को दुस्साहस करता है। यहाँ तक की साँसियों की मौत पर कोई राजनैतिक पार्टी भी हंगामा नहीं करती। इसी कारण उनकी मौत पर दिल्ली पुलिस रोज, पल-प्रतिपल जश्न मनाती है।

देश के बुद्धिजीवी वर्ग, प्रशासनिक तंत्र से लेकर सवर्ण मन यह मानकर चलता है कि अपराधी का बच्चा अपराधी ही होता है। उनकी दलील होती है कि जो समाज, कौम या कुनबा परंपरागत रूप से अपराधजीवी रहा है, वह आगे भी अपराधवृत्ति से अपना पिंड नहीं छुड़ा सकता। मतलब, जरायमपेशा कौम के दायरे में आनेवाली जातियाँ या जनजातियाँ किसी भी हाल में अपनी प्रवृत्ति नहीं बदल सकती हैं। यह बहस का प्रसंग है कि अंग्रेजों द्वारा रेखांकित इन निर्बल समुदायों के अंतर्मन में पापवृत्ति को लेकर कितनी ललक है लेकिन यह सच है कि शेष समाज का रवैया इन जातियों और जनजातियों के प्रति बेहद अमानवीय है। यह विवाद आज भी कायम है कि 140 साल पहले अपराधी घोषित इन जरायमपेशा कौम के लोग किस हद तक अपराधी हैं।

जब अपना देश उपनिवेशवादियों के चंगुल में था तो दमन और दोहन का दौर भी अपने चरम पर था। वन्य संसाधनों को लेकर विदेशी शासक विवेकहीन हो चुके थे। खेती की जमीनों से लेकर दूर दराज के पहाड़ी भू-भागों और जंगलों से वे अधिक से अधिक लाभ लेना चाहते थे। इस कारण उन इलाकों के स्थायी लोग अपने टोला-टप्पर छोड़ने को मजबूर किए गए। समय जैसे-जैसे बीता, ऐसे लोग दाने-दाने के लिए मोहताज हो गए और लाचारी में उन्होंने जिंदगी के साथ कुछ अप्रत्याशित समझौते भी किए। अपनी मानसिकता से जुदा होकर जब कोई इंसान या समाज समझौतावादी बनता है तो उसके पतन की शुरूआत यहीं से होती है। शोषक वर्ग ऐसे ही शुरूआत का इंतजार कर रहा होता है और जिंदगी के इसी मोड़ पर उस त्रासद कहानी की भूमिका तय होती है जहाँ से समझौता करने वाला व्यक्ति या समाज अपने वंशजों के भाग्य में शोषण, दोहन और अत्याचार की विरासत देने को मजबूर होता है। देश के करोड़ों खानाबदोश आदिवासी बंधुओं की नियति इसी मान्यता को ढोने के लिए मजबूर है। इन आदिवासियों के पूर्वज पता नहीं कितनी पीढ़ियाँ पहले अपराध के जरिए रोटी कमाने को मजबूर हुए लेकिन यह सर्वविदित है कि आजादी के चौवन सालों बाद भी दो दर्जन से कहीं ज्यादा खानाबदोश जनजातियाँ बद से बदतर जिंदगी जीने को

मजबूर हैं। झारखण्ड के परहिया, मध्य प्रदेश के कंजर, राजस्थान के बेडिया और राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के साँसी समुदाय के लोग आज मौत की भीख माँग रहे हैं–उनकी बदहाली देखकर तो ऐसा ही लगता है।

1871 ई० में अंग्रेजों द्वारा दर्जनों जातियाँ और जनजातियाँ अपराधी नस्ल के रूप में चिन्हित की गयी। इस प्रकार ब्रिटिशों द्वारा ऐसे रेखांकन की सीमा में आए लोग समाज से अलग किए गए और सरकारी तंत्र की कड़ी निगरानी में उन्हें रखा जाने लगा। दिल्ली मैं साँसियों के साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया गया। सरकार ने तो इन्हें अपनी निगरानी में बसा लिया लेकिन ऐसे लोगों के रोजगार की व्यवस्था क्या हुई, इस बात की जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं है। जहाँ ऐसे समुदाय के लोग बसते हैं वहाँ आजादी के करीब साढ़े पाँच दशक बाद भी नागरिक सुविधाएँ शायद ही हैं। हालाँकि देश के सुदूरवर्ती इलाकों में रहने वाले सवर्ण समाज भी सुविधाविहीन है लेकिन वे अपने इलाके के प्रभुतासम्पन्न लोग हैं। जनता उनका सम्मान करने को मजबूर हैं और स्थानीय प्रशासनिक तंत्र भी उनसे मेल-जोल बनाकर ही आगे चलने में विश्वास रखता है। हालाँकि आजादी मिलने के बाद राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में समय-समय पर जिस तरीके से दलित कार्ड खेले गए, उनके कारण ये पेशा जातियाँ आज आत्मसम्मान के साथ जिंदगी के हर क्षेत्र में सक्रिय हैं। किंतु जरायमपेशा जनजातियाँ आज भी शेष समाज के मनुवादी नजरिए, अमानवीय रवैए और उपेक्षित व्यवहार सहने को मजबूर हैं। झारखण्ड, राजस्थान, मध्य प्रदेश राज्यों में रहने वाली ऐसी जनजातियाँ किसी तरह रोजी-रोटी का जुगाड़कर अपनी जिंदगी काट लेती हैं किंतु दिल्ली के साँसी समुदाय के लोग पुलिसिया अत्याचार के नागदंश से छटपटाकर मरने को मजबूर है। इनका कसूर बस इतना है कि इनके पूर्वज अपराधी करार दिए गए थे।

दिल्ली में करीब एक लाख की संख्या में साँसी लोग रहते हैं। कहा जाता है कि अंग्रेजों के जमाने में इनकी गतिविधियाँ आपत्तिजनक थीं। इनके पास रोजगार के कोई निश्चित संसाधन नहीं थे। अत: वे लाचारी में राहजनी करते थे या इन्हें लूटपाट भी करना पड़ता था। गाँव के सेठ साहुकारों, व्यापारियों पर इनकी खास नजर होती थी। सरकारी उगाही पर भी कब्जा कर लेना इनका आमदनी का जरिया बन गया था। इस क्रम में वे हत्या करने से भी पीछे नहीं हटते थे। इस कारण इनके लिए बड़े-बड़े-कठोर नियम-कानून बनाए गए। इनकी बस्तियाँ बसायी गयीं और इन्हें पास के पुलिस चौकी में रोज हाजरी देनी होती थी। अड़ोस-पड़ोस में जब भी डकैती या हत्या की घटना होती थी तो साँसियों से ही पूछताछ की जाती थी। फिर भी

साँसी बस्तियों में कैलाश साँसी की मौत रोज होती है। उन बस्तियों में पैदा होनेवाला हर बच्चा कैलाश होता है। सोमू होता है, जिसे शक के आधार पर पुलिस सरेआम गोली मार देती है। अतः हर साँसी माँ यह मानकर चलती है कि पैदा होनेवाला उनका बेटा जन्मजात अपराधी कहलाएगा, होश सम्भलते ही पुलिस से भय खाएगा, पुलिस को हफ्ता पहुँचाएगा और जवानी में कदम रखते ही किसी भी वक्त पुलिस की गोलियों का शिकार भी हो सकता है। दिल्ली का हर साँसी युवक पुलिसकर्मियों के लिए शिकार है।

साँसी अपराध करने को मजबूर थे। कहने का मतलब यह है कि कोई भी जनजाति आम जनता को जब तक लूट रही थी, तब तक ब्रिटिश चुप थे लेकिन जैसे ही वे सरकार विरोधी गतिविधियों में शामिल हुए उन्हें अपराधी नस्ल कहा गया। यहाँ तक कि भील भी अपराधी माने गए। आम धारणा है कि साँसी ही अपराध करते हैं। सामाजिक संगठनों की दलील है कि अपराध करते हुए पकड़ा जाना और उन्हें खास अपराध के लिए सजा देना मंजूर हैं। किंतु केवल शक के आधार पर या पूर्वजों की तथाकथित अपराधिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए किसी युवक या बच्चे को प्रताड़ित करने की मानसिकता किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भला कैसे मान्य हो सकती है। लेकिन दिल्ली में ऐसा हो रहा है। खुद को चुस्त-दुरुस्त

और बेहद सक्रिय साबित करनेवाली दिल्ली पुलिस साँसियों के मामले में किस हद तक तटस्थ है, वह उनके साथ किस हद तक न्यायसंगत एवम् मानवीय व्यवहार करती है, इन सारे सवालों के जवाब तो खुद साँसी समुदाय के लोग ही दे सकते हैं।

रोजगार के नियमित और सुनिश्चित स्रोत नहीं उपलब्ध होने के कारण साँसियों को भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। वैसे तो हर घुमक्कड़ आदिवासी समाज ने आजीविका के तौर पर कुछ न कुछ रोजगार के साधन का जुगाड़ किया किन्तु ये साधन सभ्य समाज की नजर में गैरकानूनी है। किसी को देह व्यापार के जरिए अपना और परिवार का भरण-पोषण करने के लिए मजबूर होना पड़ा। तो किसी को शराब बेचना पड़ा। साँसी भी शराब बेचते रहे हैं और आज भी इनके सामने रोजगार के कोई दूसरे साधन उपलब्ध नहीं हैं। इन्ट्वाट नामक एक गैरसरकारी संस्था द्वारा प्रस्तुत अध्ययन रिपोर्ट से यह जानकारी मिलती है कि दिल्ली के चौदह इलाकों में रहनेवाले साँसी समुदाय का एक बड़ा प्रतिशत आज भी शराब के कारबार से जुड़ा हुआ है। लेकिन सवाल यह है कि इसमें साँसियों का क्या दोष है? उन्हें कोई बतानेवाला नहीं कि जब तक साँसी शराब के कारोबार से जुड़े रहेंगे तब तक इंसानी जिंदगी की खामियाँ उनका साथ नहीं छोड़ेंगीं। शिक्षा के महत्व से प्रभावित यदि किसी साँसी युवक ने शराब का कारोबार छोड़ना चाहा तो भी दिल्ली पुलिस उन्हें ऐसा नही करने देती। पुलिस तो उन्हें इस कारोबार में रहने के लिए बाध्य करती है। यदि उनका (दिल्ली पुलिस) कहना कोई युवक नहीं मानता है तो पुलिसिया यातना की शुरूआत यहीं से होती है।

साँसी बस्तियों में कैलाश साँसी की मौत रोज होती है। उन बस्तियों में पैदा होनेवाला हर बच्चा कैलाश होता है। सोमू होता है, जिसे शक के आधार पर पुलिस सरेआम गोली मार देती है। अतः हर साँसी माँ यह मानकर चलती है कि पैदा होनेवाला उनका बेटा जन्मजात अपराधी कहलाएगा, होश सम्भलते ही पुलिस से भय खाएगा, पुलिस को हफ्ता पहुँचाएगा और जवानी में कदम रखते ही किसी भी वक्त पुलिस की गोलियों का शिकार भी हो सकता है। दिल्ली का हर साँसी युवक पुलिसकर्मियों के लिए शिकार है। बिजली गुल हो जाने पर मंगोलपुरी इलाके के मनोज, सरोज और दीपू यदि साँस लेने बाहर निकलते हैं तो दिल्ली पुलिस उनका जीना मुहाल कर देती है। उन किशोरों से पूछती है कि शाम ढलने के बाद बाहर क्या कर रहे हो? पचीसों तरह के सवाल उनसे पूछे जाते हैं। उन्हें धमकियाँ देते हैं कि ध्यान रखना नहीं तो 107 लगा देंगे। मतलब, गुंडा घोषित कर देंगे। यदि किसी मनोज ने या किसी दीपू ने पुलिसकर्मियों के साथ सवाल-जवाब किया तो उन्हें 'इनकाउन्टर' करने की धमकी दी जाती है। अँधामुगल के कृपाल सिंह को पुलिस की ओर से ऐसी धमकियाँ खूब मिली। उन्होंने एक टीवी पत्रकार को जब अपनी आपबीती सुनाई तो स्थानीय पुलिस ने धमकी को सच में बदलने की बीड़ा उठा लिया। आज कृपाल सिंह पुलिस की जानकारी में फरार है। कृपाल दिल्ली में नहीं है, वह जिस दिन दिख जाएगा, उस दिन दिल्ली पुलिस उसे सोमू बना देगी यानी सरेआम उसे मौत के घाट उतार देगी।

साँसियों के सामने सबसे बड़ी समस्या है पुलिसिया अत्याचार। वे जब तक इससे मुक्त नहीं होते, आजादी का लाभ उन्हें नहीं मिलेगा। रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, नागरिक सुविधाएँ, ये सब उनके लिए जिंदगी के गौण पक्ष हैं। जिंदगी सुरक्षित हो, सुनिश्चित हो तो जीने की आस होगी। अतः आज समाज के हर तबके को यह गंभीरता से सोचना होगा कि साँसियों के प्रति पुलिस का रवैया कैसे बदला जा सकता है। पुलिस के अधिकारी अपने प्रशिक्षण संस्थानों से यही सीखकर आते हैं कि साँसी जन्मजात अपराधी हैं और हर हाल में उनका दमन किया जाना जरूरी है। किंतु यह एक पूर्वाग्रही सोच है। इससे पुलिस का खूँखार चेहरा ही प्रकट होता है। जब तक पुलिस, प्रशासन और समाज-सत्ता से जुड़े श्रीमंत् साँसी समाज की स्थिति और प्रवृत्ति का मानवीय मूल्यांकन नहीं करते तब तक कैलाश मरते रहेंगे, सोमू मारे जाते रहेंगे। ऐसी मौतों का, ऐसी हत्याओं का सिलसिला जारी रहेगा। कैलाश की मौत के बावजूद पुलिसकर्मी बेदाग बने रहेंगें या सोमू की हत्या करने वाले पुलिस के जवान पदोन्नति पाते रहेंगे किंतु उस समाज की करूण गाथा आजादी के अर्थ और अस्तित्व को झुठलाती रहेगी। जागरूकता के अभाव में साँसी समाज में कोई सोमू पैदा होगा और उसकी अभागी माँ अपने दो-दो बच्चों के हत्यारों को सजा दिलवाने के लिए तीस हजारी कोर्ट में सिर पटकती रहेगी। न्याय उनसे कोसों दूर होता है। काश! रोज होनेवाली कैलाश की मौतों को हम रोक पाते। ■

नेताजी

☐ बिजेन्द्रपाल सिंह 'मयङ्क'

कवित्त

वोट औ सपोट, नोट, जर, जोरु, जायदाद
लॉकर व नौकर सब मेरौ नाम कीजिए
राज औ समाज, सुख साज, सरताज सब
दै कैं मोई हाथ में कटोरा थाम लीजिए
मैं ही ब्रह्म, मैं ही ईश, मैं ही जगदीश प्यारे
जग कौ झमेला छाँड़ि मेरौ नाम लीजिए
कहत हैं 'मयङ्क' कवि शरण में निशङ्क रहौ
जब मैं माँगू तबई मोइ दाम-चाम दीजिए ।।1।।

भक्ति में असक्ति रखौ, शक्ति कौ प्रसाद चखौ
त्याग और समर्पण कौ भाव मन बसाइए
बीच फुटपाथ भूखे नंगे बनि दरिद्रदीन,
मेंटि मम दीनता, दीनानाथ बनि जाइए
धन हरुँ, तन हरुँ, मन पै आघात करुँ
जाति पै प्रहार जानि कृपा सहि जाइए
कहत हैं 'मयङ्क' शीश ऊपर उठाऔ मति
सेवा और श्रद्धा की धार नित बहाइए ।।2।।

मैं दासन कौ दास, तुम उदास रहि दासता
हरौ मेरी मानौ सूधे बैकुण्ठ जाऔ जी
चमचन कूँ चम्मच की चमक दिखाई नित
दारु और दारा दै दै अभयदान पाऔ जी
मेरी रुष्टता में छिपी दुष्टता कौ ख्याल करि
प्यारे लाल कबऊ धृष्टता न तुम दिखाऔ जी
कहत कवि 'मयङ्क' सब छुपाइ कैं कलङ्क मेरे
रात दिन मेरौ यश-गान तुम गाऔ जी ।।3।।

(कवि 'मयङ्क' ने अपने छन्दों के माध्यम से राजनेताओं के मन में छुपी भावनाओं को उजागर करने का प्रयास किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिकांश घटनाएँ जो समाज को आहत कर रही हैं, वे राजनेताओं तथा उनके परिवारों द्वारा घटित हो रही हैं। संप्रति : दिल्ली नगर निगम प्राथमिक विद्यालय में अध्यापन।)

व्यंग

श्री आत्माराम कनिराम राठोड मराठी के जाने-माने लेखक, कवि और सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं। उनका जन्म एक बंजारा परिवार में हुआ तथा 'ताँडा' में रहकर पले-बढ़े। इनकी कई रचनाएँ पुरस्कृत हुई हैं। 'ताँडा' नामक आत्मकथा का अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ है। 'अज्ञानकोष' आत्माराम कनिराम राठोड की उपहास-गर्भ रचनाओं का संग्रह है। ये कहानियाँ कब हमें हँसा दें, कब सोच में डाल दें या रुला दें, कहा नहीं जा सकता।

अज्ञानकोष

■ आत्माराम कनिराम राठोड

1.
मंत्रीजी ने कहा है

यह बात सन् 1962 की है।

एक दिन मैं अपने गाँव की प्राथमिक पाठशाला के सामने से गुजर रहा था कि इतने में वहाँ मंत्रीजी का आगमन हुआ। उनके साथ गाड़ियों का बहुत बड़ा काफिला था। मंत्रीजी गाड़ी से उतरे। मैंने उनको अभिवादन किया। उन्होंने मेरे कंधे पर प्रेम से हाथ रखा। हम उनके साथ चलते-चलते स्कूल में पहुँचे। स्कूल में मास्टरजी पढ़ा रहे थे। मंत्रीजी को देखकर मास्टरजी ने अभिवादन किया।

मंत्रीजी ने नम्रता से पूछा–"मास्टरजी स्कूल कैसा चल रहा है?"

मास्टरजी ने कहा–"साहबजी! अच्छा चल रहा है।"

"एक-आध बच्चा भाग तो नहीं जाता है?" –मंत्रीजी ने पूछा।

"नहीं साहब! एक भी बच्चा भाग कर नहीं जाता।"–मास्टरजी ने कहा।

अच्छा-अच्छा कह मंत्रीजी ने उनको शाबाशी दी और पूछा –"यह कौन सी कक्षा है?"

मास्टरजी ने कहा–"यह चौथी कक्षा है।"

मंत्रीजी ने पूछा–"आप क्या पढ़ा रहे हैं?"

मास्टरजी ने कहा–"मैं गणित पढ़ा रहा हूँ।"

"कौन सी पद्धति से पढ़ा रहे हैं?" मंत्रीजी ने पुनः सवाल किया।

मास्टरजी ने जवाब दिया, "एकमान पद्धति से पढ़ा रहा हूँ।"

"वही अपनी पुरानी पद्धति से क्या?" मंत्रीजी ने कहा–"मास्टरजी हमें दशमान पद्धति अपनाए तीन-चार साल हो चुके हैं। अतः हमें बच्चों को दशमान पद्धति से ही गणित पढ़ाना चाहिए।"

मास्टरजी ने कहा–"मैं कल से दशमान पद्धति से ही गणित पढ़ाने की कोशिश करुँगा।"

तत्पश्चात् मंत्रीजी ने स्कूल देखा और वापस लौट गए। मंत्रीजी की इस यात्रा के दौरान उनके साथ एक और सज्जन भी आए थे जो कि उस समय के 'पंचायती राज जिला परिषद' के अध्यक्ष थे।

मेरे गाँव में उन दिनों माध्यमिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। अतः मैंने एक माध्यमिक विद्यालय खोला। विद्यालय चल पड़ा। कोई चार-पाँच वर्ष बाद एक दिन अचानक जिला परिषद वाले वही सभापति महोदय मेरे स्कूल में आए। मैंने उनका अभिवादन किया और कहा कि "आपने क्यों तकलीफ की। यदि मुझसे कोई काम था तो बुला लेते। किसी अन्य व्यक्ति से काम था तो उसे भी मैं लेकर हाजिर हो जाता।"

उन्होंने कहा–"नहीं, नहीं, मुझे किसी से काम नहीं है। मैं तुम्हारा स्कूल देखने आया हूँ।"

मैंने कहा–"स्कूल बहुत अच्छा चल रहा है।"

"ठीक है! फिर भी मैं देखना चाहता हूँ"–उन्होंने कहा।

मैंने कहा–"आइए साहब! मैं आपको कक्षा में लिए चलता हूँ।"

उन्होंने कहा–"नहीं। मैं स्वयं जाकर कक्षाएँ देख लूँगा।"

मैं रुक गया।

सभापति महोदय एक कक्षा में गए। जहाँ एक मास्टरजी पढ़ा रहे थे। मास्टरजी ने उनका अभिवादन किया।

उन्होंने मास्टरजी की ओर देखा और बड़े रौब से पूछा–"यह कौन सी कक्षा है?"

मास्टरजी ने कहा–"जी! दसवीं कक्षा है।"

उन्होंने पूछा–"आप क्या पढ़ा रहे हैं?"

"भूगोल पढ़ा रहा हूँ।"–मास्टरजी ने कहा।

सभापति महोदय ने पूछा–"कौन सी पद्धति से पढ़ा रहे हैं?"

मास्टरजी ने कहा–"नक्शावाची पद्धति से पढ़ा रहा हूँ।"

सभापति महोदय भड़क कर बोले–"गदहे हो! कितने दिन हो गए हैं हमें दशमान पद्धति अपनाए हुए। परन्तु आप अभी भी नक्शावाची पद्धति से ही पढ़ा रहे हैं। पढ़ाना है तो दशमान पद्धति से पढ़ाओ।"

अवाक् हो मास्टरजी ने कहा–"जी साहब! मुझे भूगोल दशमान पद्धति से पढ़ाने नहीं आता।"

सभापतिजी ने कहा–"क्या गदहे हो!! भूगोल हो या इतिहास पढ़ाना हो तो दशमान पद्धति से पढ़ाना है। क्योंकि मंत्रीजी ने कहा है।"

❖

2.
इतिहास का स्वर्ण पदक

दुनिया में शायद ही कोई ऐसा इंसान हो जिसे बाग-बगीचा न पसन्द हो। कथा से भी हमें मालूम होता है कि दुनिया के पहले इंसान–आदम और हौवा–इदिन बाग में ही रहते थे। महाराष्ट्र में एक जिला है–अकोला। अकोला शहर में बहुत सारे बगीचे थे। एक बार मैं अकोला गया था। बस आने में अभी देर थी। समय बिताने के लिए मैं बस अड्डे के सामने वाले बगीचे में बैठ गया। इतने में एक नई-नई शादी हुआ जोड़ा मेरे पास आकर बैठ गया। वे आपस में ही बातचीत में मशगुल थे। पति ने पूछा–"देख! तेरे मायके का बगीचा है। इसका कोई इतिहास तो होगा ही।"

पत्नी ने कहा–"हाँ, है। इस बगीचे का नाम 'गाँधी–जवाहर बाग' है।"

पति ने पूछा–"क्या गाँधी, जवाहर का बेटा था?"

पत्नी ने कहा–"नहीं-नहीं। वे दोनों भाई-भाई थे।"

पति ने पूछा–"वह कैसे?"

पत्नी ने कहा–"तुमने वह गाना नहीं सुना है....।"

पति ने बीच में ही टोकते हुए कहा–"तुम घर में होती हो तो क्या मैं किसी की सुन सकता हूँ।"

पत्नी ने कहा–"ठीक है, ठीक है। तुम्हें वो गाना मालूम नहीं है न। बताऊँ?"

पति ने कहा–"गा के नहीं सुनाना, ऐसे ही बता दो।"

उसने कहा–"फूलों की सेज छोड़कर दौड़े जवाहर लाल।
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।।"

पति ने कहा–"इस गाने का और गाँधी तथा जवाहर के भाई-भाई होने का क्या संबंध है?"

पत्नी ने कहा–"संबंध है। भाई के लिए ही भाई फूलों की सेज छोड़कर भागता है। राम के लिए लक्ष्मण ने फूलों की सेज छोड़ी थी–तुम्हें मालूम है न। एक और प्रमाण देती हूँ। गाँधी जी को क्या कहते थे–बापू और जवाहर को चाचा। फिर बापू और चाचा भाई-भाई नहीं हुए तो क्या समधी हुए।"

बेचारा पति उसकी तरफ विनम्र भाव से देख रहा था। उसने पूछा–"मगर तुम्हारे साबरमती का संत महाराष्ट्र

में कैसे आ गया? हमारे महाराष्ट्र में तो एक गाँधी है–सेवाग्राम का।

उसने कहा–"वह सेवाग्राम का गाँधी साबरमती के गाँधी से अलग है।"

पति ने पूछा–"सेवाग्राम के गाँधी की समाधि कहाँ है?"

उसने कहा–"सेवाग्राम के आश्रम में।"

"और साबरमती के गाँधी की समाधि–" पति ने पूछा।

पत्नी ने कहा–"साबरमती में।"

पति फिर सोचने लगा। सोचते-सोचते उसने पूछा–"सेवाग्राम के गाँधी का कोई नहीं था?"

पत्नी ने कहा–"था न। एक बेटी थी–इंदिरा गाँधी।"

पति ने अवाक् होकर पूछा–"क्या इंदिरा गाँधी महात्मा गाँधी की बेटी थी?"

पत्नी ने आँखे निकाली, अपना सिर ठोका और कहने लगी–"तुम पागल हो क्या? इंदिरा, गाँधी की बेटी नहीं होगी तो क्या नेहरू की होगी।"

पति ने आश्चर्य से पूछा–"संवाग्राम के आश्रम में इंदिरा गाँधी बार-बार आती थी तो साबरमती के आश्रम में कौन जाता था?"

उसने कहा–"उसका भाई जाता था–जवाहर लाल।"

पति ने अपने याददास्त पर जोर डाला और पत्नी से बोला–"मैंने तो सुना है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की समाधि राजघाट में है।"

पत्नी ने कहा–"हे राम! राजघाट में कोई राष्ट्रपिता की समाधि नहीं है। वो तो राम पिता की समाधि है। गोली लगने के बाद गाँधी ने अपने लड़के को बुलाया। गाँधी के एक लड़के का नाम रामदास गाँधी था–यह भी मालूम है कि नहीं तुझे।"

अपनी पत्नी की तरफ उसने बड़े गर्व से देखा और पूछा–"तुम्हें इतनी बातें कैसे मालूम है?"

उसने कहा–"इसीलिए ही तो विश्वविद्यालय वालों ने इतिहास का गोल्डमेडेल दिया है।" और मिलिट्री में भर्ती के समय जैसे जवान छाती फुलाते हैं वैसे ही गर्व से पत्नी ने अपनी छाती फुलाई। और मैं वहाँ से चल पड़ा।

❖

3.

एक लाख की बात

उस दिन 'गाँधी-जवाहर बाग' में अद्भुत ज्ञान की प्राप्ति के बाद मैंने वहाँ से ट्रेन पकड़ा। ट्रेन में मेरे सामने वाली बर्थ पर दो दोस्त बैठे बातें कर रहे थे। एक दोस्त ने दूसरे दोस्त ने पूछा–"क्यों रे! तुम्हें जिब्रान की लोमड़ी की कथा के बारे में मालूम है।"

"मैं गाँव के जंगल में ही कभी नहीं गया, जिब्रान के जंगल में क्यों जाऊँ।"–दूसरे दोस्त ने कहा।

उसने कहा–"मूर्ख है। जिब्रान कोई जंगल का नाम नहीं है। वह दुनिया का बहुत बड़ा कवि, चित्रकार तथा तत्व-चिंतक था।"

"अच्छा! दुनिया का सबसे बड़ा तत्वज्ञ और उसने कथा लिखी लोमड़ी की।"–दूसरे दोस्त ने कहा।

उसने कहा–" नहीं रे, उसकी कथाओं में बहुत गहन अर्थ होता है।"

दूसरे दोस्त ने कहा–"ऐसी बात है तो सुना लोमड़ी की कहानी।"

उसने कहा–"एक लोमड़ी एक दिन सुबह के समय बहुत ऊँची पहाड़ी पर खड़ी थी। सूर्योदय हो रहा था। पहाड़ी की छाया दूसरी ओर बहुत दूर तक जा रही थी। लोमड़ी को अपनी छाया बहुत बड़ी दिखी। लोमड़ी ने सोचा– आज तो एक-आध हाथी खाए बिना अपनी भूख मिटाई नहीं जा सकेगी। लोमड़ी मरा हुआ हाथी ढूँढ़ती रही पर उसे नहीं मिला। दोपहर हो गई। उसने पेट के नीचे देखा और पाया कि उसकी छाया पहले से बहुत छोटी है। उसने सोचा– अब तो अपने पेट की भूख एक अदने चूहे से भी चली जाएगी।

सुननेवाले दोस्त ने घूरकर देखा और कहा–"लोग भी कितने नासमझ होते हैं। इससे अच्छी लोमड़ी की कहानी तो मैं जानता हूँ। एक लाख की बात की कहानी।"

पहले दोस्त ने कहा–"अच्छी बात है सुनाओ।"

दोस्त ने कहा–''एक लोमड़ी थी। उसको भूख लगी हुई थी। वह शिकार के लिए जंगल में घूम रही थी। उसको एक मरा हुआ हाथी दिखा। धूप चढ़ी हुई थी इस वजह से उस हाथी का मुँह फूला हुआ था। लोमड़ी सोचने लगी–हाथी को ऊपर से क्यों खाएँ। पहले अन्दर जाकर उसका कलेजा खाएँगे। उसके बाद आराम से बाहर आ जाएँगे। बाहर की हड्डी तो अपनी ही है। ऐसा सोचकर लोमड़ी मरे हुए हाथी के मुँह में प्रवेश कर गई। उसने पेट भर खाया। हाथी के पेट में पानी भी था। लोमड़ी ने वह भी पी लिया। अब उसे नींद आने लगी। और लोमड़ी वहीं सो गई। इस बीच धूप ढल गई और शाम हो गई। हाथी का फूला हुआ मुँह सिकुड़ गया और लोमड़ी अन्दर ही रह गई। जब वह नींद से जागी तो उसे इसका अहसास हुआ और वह बाहर निकलने का रास्ता सोचने लगी। पर हाथी की चमड़ी बहुत मोटी थी। तब लोमड़ी चिल्लाने लगी–मुझे बचाओ–मुझे बचाओ, मुझे निकालो।

पर कोई नहीं आया। लोमड़ी को अब इस भयानक संकट का अंदाजा होने लगा। उसने सोचा–बाहर तो किसी तरह निकलना ही है। ऐसा सोच वह फिर चिल्लाने लगी। मुझे बचाओ, एक लाख दूँगी....।

रास्ते से दो दोस्त गुजर रहे थे। उन्होंने सोचा– चलो मुफ्त में एक लाख मिल रहा है। इसको बचा लेते हैं। ऊपर से एक जीव बचाने का पुण्य भी मिलेगा। उन दोनों ने हाथी का पेट फाड़कर लोमड़ी को बाहर निकाला। लोमड़ी ने उन दोनों के प्रति आभार प्रकट किया।

उन दोनों मित्रों ने कहा–आभार क्या मानती है। चल दे एक लाख रुपया।

लोमड़ी ने कहा–किस बात का दूँ एक लाख रुपया। मैं तो वनवासी हूँ। मेरे पास कहाँ से आएँगे एक लाख। क्या किसी वनवासी के पास एक लाख रुपए होते हैं। हाँ, मगर एक लाख की बात बता देती हूँ।

उन दोनों ने सोचा– एक लाख तो गया हाथ से। एक लाख की बात ही सुन लेते हैं। ऐसा सोच उन्होंने कहा–ठीक है सुनाओ।

लोमड़ी ने कहा–कभी भी, गलती से भी बड़े के पेट के अन्दर मत जाना।

❖

4.
सयाना पागल

सफर के बाद जब मैं घर पहुँचा तो बहुत थका हुआ था और रात भी हो गई थी। मैं सो गया। सुबह उठकर अखबार पढ़ रहा था कि श्रीमती जी ने आवाज लगाई–''अजी सुनते हो! पड़ोस में नया किराएदार आया है। जरा उससे बचके रहना।''

''क्यों?''–हमने पूछा। ''क्या वह कोई चोर-डकैत या आतंकवादी है?''

भाग्यवान ने कहा–''वह सब होता तो भी ठीक था। पर वह तो उनसे भी बड़ा है।''

मैने पूछा–''क्या है वो?''

भाग्यवान ने बोला–''वो पागल है।''

मैंने कहा–''तुम्हें किसी को पागल का सर्टिफिकेट देने का क्या हक है।''

कहने लगी–''इसमें सर्टीफिकेट देने की क्या बात है। वह स्वयं ही कहता है कि वह पागल है।''

बात को समाप्त करने की मंशा से मैंने कहा–''ठीक है, ठीक है मैं उससे दूर रहूँगा।''

मैं सोच में पड़ गया। सोचने लगा कि दुनिया में कोई पागल अपने आप को पागल नहीं कहता। वह तो अपने आप को समझदार और दुनिया को पागल समझता है। मगर हमारा यह पड़ोसी अपने आप को पागल कह रहा था। मेरे मन में उससे मिलने की इच्छा बढ़ती जा रही थी। मेरी पत्नी कहीं गई हुई थी। अत: मैं अपने पड़ोसी से मिलने उसके घर पहुँचा। पड़ोसी ने दरवाजा खोला। मैं अन्दर गया तथा अपने पड़ोसी को नमस्कार किया।

वह कहने लगा–''पागल किसी को नमस्कार नहीं करता। और आप.....?''

''मैं आप के पड़ोस में रहता हूँ। बाहर गया था, रात

में ही आया हूँ। आप नए-नए आए हैं। अत: सोचा आपसे परिचय कर लूँ।''

''पागल का कोई परिचय नहीं होता।'' उसने कहा।

हमने कहा-''ठीक है। मगर मेरे एक-दो सवाल थे। क्या आप जवाब देंगे?''

पड़ोसी कहने लगा-''पागल किसी के सवाल का जवाब नहीं देता।''

मैं दंग था। फिर भी मुझसे रहा नहीं गया। मैंने अपनी बात मनवाने के भाव से बोला-''भाई साहब! देखिए हम दोनों एक ही राष्ट्र के नागरिक हैं। इस नाते हम भाई-भाई हैं। क्या एक पागल दूसरे भाई को कोई बात नहीं बता सकता।''

उसने कहा-''हाँ! तुम मेरे भाई हो तो बता सकता हूँ।'' मैं चुपचाप बैठ गया।

वह कहने लगा-''बात ऐसी है भाई! मेरा जन्म 1948 में हुआ और पाँच साल की उम्र में स्कूल गया। पहली कक्षा के गुरूजी ने मुझे पढ़ाया- 15 अगस्त, 1947 के दिन क्रांतिकारियँ ने भारत माँ की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ कर फेंक दीं। मैं पहली कक्षा पास कर दूसरी कक्षा, और क्रमश: तीसरी, चौथी करता आठवीं कक्षा तक पहुँच गया। हर कक्षा में गुरूजी यही बात कहते थे। जब मैं आठवीं में था तो वहाँ एक बहुत अच्छे गुरूजी थे। वह हम सबको बहुत प्यार करते थे। एक दिन कक्षा में उन्होंने कहा कि हर किसी को कोई न कोई शौक होना चाहिए, अच्छी आदतें होनी चाहिए। उन्होंने सभी विद्यार्थियों से उनके शौक पूछे। किसी ने सिक्के जमा करने की बात की तो किसी ने डाक टिकट जमा करने की बात की। मैं सोचने लगा कि मुझे कुछ अलग करना चाहिए। सोचते-सोचते कई दिन बीत गए। अन्तत: मैंने सोचा- क्यों न मैं 15 अगस्त, 1947 के दिन क्रांतिकारियों द्वारा तोड़ी गई भारत माँ की गुलामी की बेड़िया ढूँढू।

मैं पढ़ते हुए भी इन बेड़ियों को ढूँढ़ता रहता था, यद्यपि पढ़ाई के कारण ज्यादा समय नहीं मिलता था। पढ़ाई खत्म हुई और मैं नौकरी में लगा। अब मेरा बचा हुआ समय भारत माँ की टूटी हुई गुलामी की बेड़ियाँ ढूँढ़ने में लगता था। एक दिन किसी ने मुझे एक कविता सुनाई जिसके बोल थे- 'चरणों को धोता सागर राज विशाल है'। मैं सोचने लगा-बेड़ियाँ तो पैरों में ही डाली जाती है और यदि भारत माँ के पाँव दक्षिण में ही हैं तो बेड़िया दक्षिण में मिल सकती हैं। मैं पूरा दक्षिण भारत घूमा। पर मुझे ये बेड़ियाँ नहीं मिली।

एक दिन मेरे दोस्त ने कहा कि पुरुष के पाँव में बेड़ियाँ डाली जाती है। स्त्रियों के तो हाथ में डाली जाती है। अत: निश्चित ही भारत माता के हाथ में डाली गई होंगी। मैंने भारत माता का एक विशाल चित्र देखा। उसे भारत के नक्शे पर रख के देखा। भारत माँ के हाथ मध्य प्रदेश-महाराष्ट्र में मिला जो कि भारत के मध्य भाग में आते थे। मैंने वो पूरा इलाका छान मारा। पर भारत माँ की टूटी हुई बेड़ियाँ नहीं मिली। किसी ने कहा-ब्रिटिश साम्राज्य ने आतंकवादी करार दे गले में बेड़िया डाली होगी। मैं हिमालय में इन बेड़ियों को ढूँढ़ता रहा पर मुझे कहीं नहीं मिली।

अब मेरी शादी हो गई थी, पर मैं हमेशा गुमसुम रहता था और भारत माँ की टूटी हुई गुलामी की बेड़ियाँ ढूँढ़ता रहता था। मेरी पत्नी को लगा कि मेरा प्रेम कहीं और है। उन्होंने अपनी इस शंका के विषय में अपने पिता से जिक्र किया। मेरे ससुर जी राज्य के गृहमंत्री थे। उन्होंने मुझे बुला कर समझाया-''बेटा! शादी के पहले जो कुछ हो गया सो हो गया। अब तुमने शादी कर ली है। तुम्हें मेरी लड़की को प्यार देना चाहिए तथा उसकी ओर ध्यान देना चाहिए।''

मैंने कहा-''ऐसी कोई बात नहीं।''

भाग्यवान सामने थी। बोली-''फिर तुम गुमसुम क्यों रहते हो।''

मैंने उनके पिता के सामने ही बताया कि मैं भारत माँ की टूटी हुई गुलामी की बेड़ियाँ ढूँढ़ने के लिए गुमसुम रहता हूँ और सोचता रहता हूँ कहाँ मिलेंगी। मेरे ससुर कहने लगे-''इसमें परेशानी की क्या बात है। मैं अभी पुलिस महानिदेशक को बोल देता हूँ, वह ढूँढ़ निकालेंगे।'' उन्होंने पुलिस महानिदेशक को फोन कर दिया और हम दोनों घर आ गए।

आठ-दस दिन बाद महानिदेशक का एक संदेशवाहक मेरे घर पहुँचा और कहा-''हमने पूरे देश के मालखाने ढूँढ़े पर ये बेड़ियाँ नहीं मिलीं। देश में कहीं भी गुलामी की इन बेड़ियों की तोड़े जाने की प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.

आर.) भी दर्ज नहीं हुई है। लगता है उन्होंने इन बेड़ियों को बेच दिया होगा।''

मैंने कहा–''ऐसी बात नहीं है। बेड़ियाँ तोड़ी गई हैं, चोरी नहीं गई है।''

मेरे ससुरजी ने मुझे अपनी संस्तुति के साथ इस कार्य के लिए केंद्रिय गृहमंत्री के पास भेजा। केंद्रिय गृहमंत्री जी ने कहा–''बेटे घबराओ मत। तुम उनके दामाद हो तो मेरे भी दामाद हो। मैं सी.बी.आई. को कह देता हूँ, वे ढूँढ़ निकालेंगे।''

पन्द्रह दिन और बीते। एक दिन सी. बी. आई. का एक अफसर मेरे घर आया और कहने लगा–''पूरे हिन्दुस्तान में टूटी हुई गुलामी की बेड़ियाँ नहीं मिल रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेज लोग अपने साथ ले गए होंगे। तुम बंकिघम पैलेस को लिखकर देखो।'' ऐसी राय देकर अफसर चला गया।

मेरी पत्नी कहने लगी–''तुम तो निरे पागल हो। तुम्हारी भारत माँ एक औरत ही होंगी ना और औरतों को सोने का बहुत शौक होता है। अंग्रेजों के साम्राज्य में सूर्यास्त नहीं होता था। निश्चय ही उन्होंने भारत माँ को लोहे की बेड़ियाँ नहीं डाली होगी। यदि डाली होगी तो निश्चय ही सोने की डाली होगीं और तुम्हारी भारत माँ ने ही छुपा लिया होगा।''

मैं अपनी पत्नी की बात से सहमत नहीं था। मैंने बंकिघम पैलेस को लिखा–''यदि वे बेड़ियाँ अपने साथ ले गए हों तो उसका एक टुकड़ा हमें अवश्य भेजें।'' कुछ दिनों बाद मेरे पत्र का जवाब मिला। बंकिघम पैलेस के अधिकारियों ने लिखा कि–''हमने भारत माँ को कोई बेड़ियाँ नहीं डाली थी। परन्तु ये बेड़ियाँ जिन्हें तुम ढूँढ़ रहे हो यदि मिल जाएँ तो हमें भी भेज देना, क्योंकि वह हमारी सम्पत्ति है।''

मैं बेड़ियाँ लगातार ढूँढ़ता रहा।

एक दिन मैंने एक लेख पढ़ा। लेखक ने जोर देकर कहा था–''भारत माँ की गुलामी की बेड़ियाँ एक बार टूट गई थी, मगर फिर से वे गुलामी में आ गई हैं। हम वो बेड़ियाँ तोड़ कर दिखाएँगे।'' मैं उसी दिन समाचार पत्र के दफ्तर में पहुँचा तथा संपादक महोदय से यह घोषणा करने वाले महानुभाव का पता पूछकर उनके पास पहुँचा और कहा–''साहबजी कृपा कर मेरा एक छोटा सा काम कर देंगे।''

उन्होंने कहा–''हाँ-हाँ। लोगों के काम करने के लिए ही तो मैं यहाँ बैठा हूँ। बोलो तुम्हारा क्या काम है''

मैंने कहा–''साहबजी! भारत माँ की पहली टूटी हुई गुलामी की बेड़ियाँ नहीं मिल रही हैं। और आप कहते हैं कि भारत माँ को और बेड़ियाँ चढ़ा दी गई है। साहबजी क्या टूटी हुई बेड़ियों की एक-आध कड़ी मुझे भी मिलेगी?''

महानुभाव हँस कर बोले–''भारत माँ को गुलामी की कई बेड़ियाँ चढ़ी हुई हैं। मंदिर से लेकर मस्जिद तक, मदिरापान इत्यादि। तुम्हें कौन सी बेड़ी तोड़नी है और क्या कीमत दोगे। देखो भाई! इतना बड़ा संगठन चलाना कोई खेल की बात नहीं। एक-दो बेड़ियाँ तोड़कर दिखाना है तो उसकी कीमत तुम्हें चुकानी ही पड़ेगी।''

और तब से मैं पागल हो गया।

कुछ दिनों बाद मेरा वो सयाना पागल पड़ोसी न जाने कहाँ गायब हो गया। फिर मुझे वो कहीं नजर नहीं आया।

❖

5.

दुनिया डूब रही है

शताब्दियों पूर्व देवों में संत कवि तुकाराम पैदा हुए थे। लोग उन्हें पागल तुक्या कहते थे। लोग ठीक ही कहते थे, क्योंकि उसने अपना दिवाला निकाल लिया था। उसकी परिस्थिति पर तरस खाकर गाँव के जमींदार ने उसे अपने खेत में पक्षी हाँकने के लिए रख लिया।

तुकाराम खेत में गया। मक्का तैयार था। अत: पक्षी आते थे और चोंच में दाना लेकर भाग जाते थे। तुकाराम सोचने लगा–''ये बेचारे पक्षी दाना तो यहाँ खा लेते हैं पर

पानी कहाँ से पीते होंगे। ऐसा सोचकर तुकाराम ने पत्तों की झाड़ से कुछ पत्ते तोड़े, उसके दोने बनाए और हर झाड़ में एक दोना बाँध दिया। अब तुकाराम उसमें रोज पानी भरने लगा। पक्षी अब मक्के के दाने खाते और वहीं पानी पीते थे।

एक दिन वहाँ जमींदार आया। उसने देखा कि हर मक्के के पास एक दोना बँधा हुआ है। उसने पूछा–"तुक्या ये किसने बाँधे?"

तुकाराम ने कहा–"मैंने ही बाँधे हैं।"

"किसलिए बाँधे हैं?" जमींदार ने पूछा।

उसने कहा–"मालिक बात ऐसी है कि ये बेचारे पक्षी दाने तो यहीं खाते हैं पर इन्हें पीने का पानी नहीं है। मैंने सोचा क्यों न पानी की व्यवस्था यहीं कर दूँ।"

जमींदार ने तुक्या को हटा दिया।

भला ऐसे तुकाराम को लोग पागल क्यों न समझते।

तुकाराम को पता चला कि उत्तर भारत में कोई संत महात्मा पैदा हुए हैं। तुकाराम उनसे मिलने के लिए एक दिन सुबह-सुबह अपना सामान और एक तारा लेकर निकल पड़े। लोगों ने पूछा–"तुक्या तू कहाँ जा रहा है?"

तुकाराम ने कहा–"मैंने सुना है कि उत्तर में कोई कबीर नामक महात्मा पैदा हुए हैं। मैं उनसे बात करने जा रहा हूँ।"

लोगों ने सोचा–भला पागल तुक्या से महात्मा कबीर क्या बात करेंगे। इसको देखकर ही पीटेंगे। पर कबीर की तुक्या से मुलाकात कैसी होती है, यह देखने के लिए लोग पीछे-पीछे चलते लगे।

इधर कबीर को भी पता चला कि दक्षिण में तुकाराम नामक संत पैदा हुआ है। एक दिन कबीर सुबह-सुबह घर से निकल पड़े। लोगों ने पूछा–"कबीर कहाँ जा रहा है?"

कबीर ने कहा–"दक्षिण में तुकाराम नामक महात्मा हैं। मैं उनसे बात करने जा रहा हूँ।" लोगों ने सोचा–पागल कबीर से महात्मा तुकाराम क्या बात करेंगे। इसको देखकर तो वे पीटेंगे ही। ऐसा सोचकर लोग कबीर के साथ निकल पड़े।

कबीर और तुकाराम दोनों के पीछे-पीछे काफिला चलने लगा। जब वे एक दूसरे के नजदीक पहुँचे तो नर्मदा नदी बीच में आ गई। ऊपर से नर्मदा में बाढ़ भी आई हुई थी। तुकाराम कबीर को देख सकता था और कबीर तुकाराम को देख सकता था। पर वे एक दूसरे की आवाज नहीं सुन सकते थे। तुकाराम ने कबीर का अभिवादन करने के लिए जमीन पर हाथ लगाया। कबीर ने स्वीकार किया और उसके बाद अपने पास में पड़े हुए एक बहुत बड़े पत्थर को उठाकर नदी में फेंक दिया। यह देखते ही तुकाराम बोम मारने लगा और फिर वापस चल पड़ा। साथ आए हुए लोग चिढ़ गए। उन्होंने चिढ़कर पूछा–"तुक्या तुम तो कबीर से बात करने आया था फिर वापस क्यों जा रहा है?"

तुकाराम ने कहा–"हमारी बात हो गई।"

लोग कहने लगे–"पागल तो तू है ही, लगता है तू लबाड़ (धूर्त) भी है।"

तुकाराम ने कहा–"मैंने क्या लबाड़ी की?"

वे कहने लगे–"तुने कब बात किया कबीर से। कबीर तो उतना दूर खड़े हैं।"

तुकाराम ने कहा–"हमारी बात हो गई। कबीर ने पत्थर उठा के फेंका और इस तरह कहा कि दुनिया डूब रही है। मैंने जवाब दिया कि मैं बोम मार कर चिल्ला रहा हूँ। पर कोई सुनता नहीं है। मैं क्या करुँ? यही हमारी बात हुई।"

घर आकर मैंने श्रीमती जी से कहा कि आज मैंने भाषण में तुकाराम और कबीर की कहानी सुनाई है।

उन्होंने आँखें तरेरकर कहा–"पागलों जैसी बातें मत किया करो। लोग तुम्हें पागल समझने लगेंगे।।"

मैंने कहा–"इसमें पागलपन की क्या बात है।"

उसने कहा–"क्या पागलपन है–समझते नहीं। तुकाराम और कबीर के जीवनकाल में सदियों का अन्तर है। और तुम्हारा कबीर तो अँधा था। उसे नदी में उठाकर फेंकने के लिए पत्थर कहाँ से दिखा।"

मैं निरुत्तर हो गया।

6.
समुन्दर में आग

मैं बैठा था।

यद्यपि मैं चिढ़ता नहीं। पर जब लोग कबीर को अँधा कहते हैं तो मुझे बहुत चिढ़ आती है।

ऐसे ही एक बार की बात सुनाता हूँ।

एक भैंस, एक घोड़ी और एक लोमड़ी की आपस में दोस्ती थी। बेचारी लोमड़ी आँखों से अँधी थी। भैंस अपने मालिक के साथ खेत में रहती थी। घोड़ी गाँव-गाँव में घूमकर व्यापार करने में मालिक का साथ देती थी।

एक बार घोड़ी का मालिक कपड़े का व्यापार कर गाँव लौट रहा था। रास्ते में रात हो गई। रास्ते में उसे भैंस के मालिक का घर दिखा। वह भैंस के मालिक के पास गया और पूछा–"क्या मैं रात भर के लिए रुक सकता हूँ?"

उसने कहा–"हाँ, हाँ। शौक से रुक जाओ।"

मालिक ने अपनी घोड़ी भैंस के पास ही बाँध दी। फिर उसने खाना खाया और सो गया।

उसी रात घोड़ी ने बछड़े तथा भैंस ने पाड़ी को जन्म दिया। संयोगवश घोड़ी का बछड़ा भैंस के नीचे जाकर खड़ा हो गया और भैंस की पाड़ी घोड़ी के नीचे खड़ी हो गई। सुबह जब भैंस के मालिक की नींद खुली और उसने यह देखा तो सोचने लगा कि चलो यह अच्छा हुआ कि अपने भैंस ने घोड़ी का बछड़ा जन्म दिया। यदि वह पाड़ी देती तो उसे बार-बार खाना खिलाना पड़ता और बहुत दिनों तक उसकी सेवा करनी पड़ती तब जाकर कहीं दूध मिलता। घोड़ी से तो जितना चाहे काम करवा लो और फिर छोड़ दो। वह अपने आप जंगल में चरकर वापस आ जाती है। भैंस का मालिक बहुत आनन्दित हुआ। वह अपनी भैंस और घोड़ी का बछड़ा लेकर चल पड़ा। घोड़ी के मालिक ने जब यह देखा तो उसने उससे पूछा–"मेरी घोड़ी के बछड़े को कहाँ ले जा रहे हो।"

उसने कहा–"यह तुम्हारे घोड़ी का बछड़ा नहीं है। बल्कि यह तो मेरे भैंस के नीचे था। तुम्हारे घोड़ी के नीचे तो यह पाड़ी है।"

मैंने कहा–"तुम्हारा मतलब है कि मेरी घोड़ी ने पाड़ी दिया है और तुम्हारी भैंस ने बछड़ा दिया है? नहीं भाई दुनिया में ऐसा नहीं होता है।"

भैंस के मालिक ने कहा–"हमने अपनी आँखों से देखा है।"

घोड़ी के मालिक ने उसे बहुत समझाया। पर भैंस का मालिक नहीं माना।

लाचार हो घोड़ी के मालिक ने राजा के पास अपनी फरियाद की। राजा ने उसकी फरियाद सुनी और कहा कि, "दूसरे दिन आना। मैं भैंस के मालिक को भी बुला लेता हूँ। हमारा न्यायाधीश तुम्हारा न्याय कर देगा।"

घोड़ी का मालिक अगले दिन दरबार में पहुँचा जहाँ भैंस का मालिक पहले से ही मौजूद था।

परन्तु उस दिन न्यायाधीश नहीं आया था। राजा ने सोचा– छोटा सा मुकदमा है। चलो आज हम ही न्याय कर देते हैं।

राजा ने घोड़ी के मालिक से पूछा–"तुम्हारी क्या फरियाद है?"

उसने कहा–"मालिक मैंने अपनी घोड़ी इसके खेत में बाँधी थी। जहाँ इसकी भैंस भी बँधी थी। रात में मेरी घोड़ी तथा इसकी भैंस दोनों ने बच्चे जने। इसकी पाड़ी मेरी घोड़ी के नीचे आ गई और घोड़ी का बछड़ा भैंस के नीचे आ गया। अब यह कहता है कि मेरी भैंस ने घोड़ी का बछड़ा दिया है।"

राजा ने भैंस के मालिक से पूछा–"तुम्हारा क्या कहना है?"

उसने कहा–"महाराज! जब मैं नींद से उठकर भैंस के पास गया तो देखा कि मेरी भैंस जगी हुई थी और उसके नीचे घोड़ी का बछड़ा था। इसका मतलब है कि मेरी भैंस ने बछड़ा ही दिया होगा। और यह हम दोनों ने देखा है।"

राजा ने घोड़ी के मालिक से पूछा–"क्या भैंस का मालिक जो बात कह रहा है वह सही है?"

घोड़ी के मालिक ने कहा–"हाँ महाराज! सही है।"

महाराज ने निर्णय दिया–"अगर दोनों गवाह कहते हैं

कि भैंस के नीचे बछड़ा था और घोड़ी के नीचे पाड़ी थी तो इससे यही साबित होता है कि भैंस ने बछड़ा दिया होगा और घोड़ी ने पाड़ी ही दिया होगा।''

घोड़ी का मालिक सिर पीटता हुआ वापस आ गया। चार-छ: दिन बाद भैंस, घोड़ी और लोमड़ी एक जगह मिले। भैंस और घोड़ी ने अपना दुखड़ा अँधी लोमड़ी को सुनाया। लोमड़ी ने कहा–''तुम दोनों आपस में अच्छे दोस्त हो। समस्या एक दूसरे के बच्चे को संभालने की है। मगर तुम्हारा महाराज कितना अन्यायी है। इंसान इतने अन्यायी ही होते हैं। परन्तु घबराओ मत तुमने अपना ही बछड़ा जन्म दिया है, इसकी गवाही मैं दूँगी।''

घोड़ी ने अपने मालिक से कहा कि बछड़े जनते हुए अँधी लोमड़ी ने हमें देखा है। वह इस बात की दरबार में गवाही देने के लिए भी तैयार है।

घोड़ी का मालिक पुन: राजा के पास यह फरियाद लेकर गया कि घोड़ी ने बछड़ा और भैंस ने पाड़ी दिया है तथा उन्हें जनते हुए देखने वाला गवाह मिल गया है। अत: मुझे फिर से न्याय दिया जाए।''

राजा ने कहा–''कौन है तुम्हारा गवाह?''

घोड़ी के मालिक ने कहा–''एक अँधी लोमड़ी है।''

राजा मन ही मन हँसा और कहा–''ठीक है तू कल अपने गवाह के साथ आना। मैं भैंस के मालिक को भी बुला लेता हूँ।''

दूसरे दिन भैंस का मालिक दरबार में पहुँचा। घोड़ी का मालिक भी अँधी लोमड़ी को लेकर दरबार में पहुँचा। घोड़ी के मालिक ने राजा से अपने गवाह के लिए कुर्सी की व्यवस्था की गुजारिश की। लोमड़ी कुर्सी पर बैठ गई। राजा तथा सारे दरबारी भी लोमड़ी की गवाही सुनने को आतुर थे। मगर लोमड़ी तो सो रही थी। राजा चिढ़ गया। उसने चिढ़ कर कहा–''लबाड़ लोमड़ी, दरबार में सोने के लिए आई है या गवाही देने के लिए।''

लोमड़ी ने कहा–''क्षमा करें महाराज। क्या था कि रात समुन्दर में आग लग गई थी और बुझाते-बुझाते पूरी रात चली गई। इसीलिए अब मुझे नींद आ रही है।''

राजा ने गुस्से से कहा–''लबाड़ लोमड़ी! समुन्दर में कहीं आग लगती है।''

लोमड़ी ने कहा–''क्षमा महाराज! अगर आपके राज्य में घोड़ी पाड़ी को और भैंस घोड़ी के बछड़े को जन्म दे सकती है तो समुन्दर को आग क्यों नहीं लग सकती।''

राजा को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने घोड़ी के मालिक को बछड़ा और भैंस के मालिक को पाड़ी दे दिया।

यह कहानी मैं अपने बेटे को सुना रहा था। भाग्यवान बगल में सोई हुई थी। शायद आधी नींद थी। उठकर उसने डाँट लगाई–''चुपचाप सो जाओ। अँधी लोमड़ी को समुन्दर में लगी हुई आग कैसे दिखी होगी।''

मैं सो गया।

❖

7.
गणतंत्र की खोज

फुर्सत में जंगल में घूमना मेरी बचपन की आदत है। उस दिन फुर्सत मिलते ही मैं पास के जंगल में चला गया। मैंने वहाँ देखा कि एक आदमी पूरे शिकारी लिबास में अपने हाथ में मैग्नीफाईंग (खुर्द-बीनी) शीशा लिए हुए कुछ ढूँढ़ रहा था। मैंने उससे पूछा–''भाई! क्या ढूँढ़ रहे हो?''

उसने कहा–''मैं गणतंत्र ढूँढ़ रहा हूँ।''

मैंने कहा–''भाई गणतंत्र को क्या हुआ? वह तो ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक उमड़ रहा है, चिल्ला रहा है।''

उसने कहा–''नहीं, नहीं। गणतंत्र तो खो गया है।''

मैंने पूछा–''कब खोया?''

उसने कहा–''वह तो 26 जनवरी, 1950 की रात में ही खो गया।''

मैंने पूछा–''आप यह बात कैसे कह सकते हैं।''

उसने कहा–''आपको मालूम है कि हमारे देश के पुलिस महकमे में खोए हुए व्यक्तियों का एक प्रकोष्ट होता है।''

मैंने कहा–"हाँ मालूम है।"

उसने कहा–"मैंने गणतंत्र ढूँढ़ने की 'प्रथम सूचना रिपोर्ट' 1950 में ही कर दिया था।"

मैंने बोला–"तो?"

उसने कहा–"तो क्या। पुलिस को आज तक गणतंत्र नहीं मिला है।"

मैं सोचने लगा कि यह आदमी तो अजीब घनचक्कर दिख रहा है। मैंने कहा–"भाई जरा तफसील से बात को समझाओ ताकि मैं आपकी समस्या समझ सकूँ।"

उसने कहा–"समस्या कोई नहीं है भाई! हमने थाने में रिपोर्ट दर्ज किया कि गणतंत्र खो गया है, पर काम नहीं हुआ। मैं एस.पी. के पास गया, डी.आई.जी. के पास गया पर काम नहीं बना। मैं आई.जी. के पास गया और कहा–"साहब! हमारा गणतंत्र खो गया है। कृपया उसे ढूँढ़ने में हमारी मदद करें। मैं थाने से लेकर आप तक अर्जी लेकर ढूँढ़ते हुए चक्कर मार रहा हूँ। परन्तु मुझे इस काम में कहीं से कोई मदद भी नहीं मिल रही है।"

आई.जी. साहब ने कहा–"देखो! कुछ करवाने के लिए कुछ देना पड़ता है।"

मैंने कहा–"साहब! मैं अपनी समस्त चल-अचल सम्पत्ति 'पुलिस कल्याण निधि' में देने के लिए तैयार हूँ। पर गणतंत्र ढूँढ़ दें।"

आई.जी. महोदय कहने लगे–"पुलिस कल्याण के लिए तो सरकार बैठी है।"

तब मैंने उससे कहा–"तो ठीक है। जब लेन-देन की बात हो गई तो फिर तुम्हारा काम तो हो ही गया होगा।"

निराशा भरी आवाज में वह बोला–"नहीं भाई! मेरा काम नहीं हुआ है।

मैंने पूछा–"क्यों?"

उसने कहा–"मुझे जिस अधिकारी के पास भेजा गया, उसने फिर से प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखने को कहा। वह मैंने कर भी दिया।

अधिकारी कहने लगा–"तुम अपने गणतंत्र की उम्र, उसका रंग बोलो और उसकी ऊँचाई बताओ। और उसका एक फोटो ले आओ। मैं परेशानी में पड़ गया कि आखिर क्या होने वाला है इससे। मैंने अपनी समस्या अपने एक दोस्त को बताई। मेरे दोस्त ने कहा–"गणतंत्र का फोटो लोकसभा सचिवालय में मिल सकता है।

मैंने पूछा–"तो क्या हुआ?"

उसने कहा–"मैंने लोकसभा सचिवालय को लिखा –मुझे गणतंत्र का एक फोटो चाहिए। लोकसभा सचिवालय ने मुझे बुलवाया और बताया कि सचिवालय संसदीय मंत्री के अधीन काम करता है। अत: मैं उनकी अनुमति लाकर दूँ, तभी सचिवालय गणतंत्र का फोटो देने के बारे में सोच सकता है।

मैं संसदीय मंत्री महोदय से मिला और कहा–साहब! मैं गणतंत्र की खोज में हूँ। कृपया मुझे उसका एक फोटो उपलब्ध करवाने में मेरी मदद करें।

मंत्रीजी ने कहा–"देखो भाई! मैं प्रधानमंत्री जी के अधीन काम करता हूँ। यदि आप प्रधानमंत्री की अनुमति ले आएँ तो मैं आपके काम के बारे में सोच सकता हूँ।"

मैं प्रधानमंत्री जी के सचिव से मिला। सचिव महोदय ने कहा–"भाई! तुम लोग भी कहाँ-कहाँ से आ जाते हो। तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति के अधीन होता है।"

मैंने राष्ट्रपति महोदय को अर्जी दी। उनके सचिव ने मुझको बुलाकर पूछा–"तुम्हारी समस्या क्या है?"

मैंने कहा–"साहब मेरी समस्या बहुत छोटी सी है। गणतंत्र की खोज के लिए मैंने एक रपट लिखवाई है। इसलिए पुलिस वाले गणतंत्र का फोटो माँग रहे हैं।" उसने मेरी अर्जी राष्ट्रपति महोदय के सामने रख दी। राष्ट्रपति महोदय ने उस पर लिखा–सुरक्षा सचिव को यदि कोई आपत्ति न हो और शासकीय फोटोग्राफर के पास फोटो उपलब्ध हो तो दे दिया जाए।

सुरक्षा सचिव ने मेरी अर्जी छायाचित्र विभाग को भेज दी। कुछ दिनों बाद छायाचित्र विभाग से मुझे एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था, "शासकीय नियमानुसार बड़ी परियोजनाओं का फोटो लेना मना है। शायद तुम्हारा गणतंत्र बड़ी परियोजना के अन्तर्गत आता है। इसलिए यह हमारे पास उपलब्ध नहीं है। अत: हम आपको दे सकने में असमर्थ हैं।"

फिर बात वहीं की वहीं आ गई। ■

(हाल ही में 'भाषा प्रकाशन केंद्र' वड़ोदरा से प्रकाशित इस रचना का हिन्दी अनुवाद यहाँ सर्वप्रथम दिया जा रहा है, जो कि क्रमश: जारी रहेगा।–संपादक)

भारतीय जनजातीय समाज, साहित्य और वैकल्पिक लेखन

■ अनिल कुमार पाण्डेय

भारतवर्ष सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से विविधतापूर्ण विशाल देश है। आँकड़ों के हिसाब से भारत में जनजातियों की संख्या किसी भी अन्य देश से अधिक है। भौगोलिक, भौतिक विशिष्टताओं के फलस्वरूप अपनी आर्थिक संरचना में भारत की ये जनजातियाँ उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर हैं। जहाँ कुछ जनजातियाँ आज भी खानाबदोश, भोजन संग्रहीता व चारागाही के स्तर पर हैं, वहीं कुछ अन्य इलाकों की जनजातियाँ आज की औद्योगीकृत एवं भूमंडलीकरण की व्यवस्था से प्रभावित हो चुकी हैं। यद्यपि इन समाजों की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ हैं पर इन सभी का आर्थिक पिछड़ापन इन्हें आज भी एकरूपता प्रदान करता है। आजादी के बाद की हमारी विकास यात्रा में जनजातीय समाज और हाशिए पर गए हैं तथा उनकी तकलीफें बढ़ी हैं। यही नहीं उन्हें अपनी जमीन, जल व जंगल जैसी नैसर्गिक सम्पदाओं से बेदखल भी होना पड़ा है। त्रासदी यह कि उनका बेदखल होना इन जनजातियों के लिए संविधान के विशिष्ट प्रावधानों, अनुसूचियों तथा पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1996 के पश्चात् भी जारी है। संविधान के सभी प्रावधानों को धता बताते हुए यह कार्य बेरोकटोक जारी है।

1996 में पंचायत उपबन्ध अधिनियम लागू हुआ जिसके अंतर्गत यह प्रावधान है कि प्रत्येक ग्राम सभा आम लोगों की परंपराओं, उनकी सांस्कृतिक पहचान, अपनी गाँव की सीमा में आने वाले सभी संसाधनों और गाँव समाज में हर तरह के विवादों को अपनी परंपरा के अनुसार निपटाने के लिए सक्षम होगी। परन्तु बस्तर (छत्तीसगढ़) के नगरनार क्षेत्र में ग्राम-सभाओं की असहमति के बावजूद इस्पात का कारखाना लगाने हेतु 'नेशनल मिनिरल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन' को सैकड़ों एकड़ जमीन आवंटन किया गया। ग्राम सभाओं की शिकायत पर यह मामला 'अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग' के पास पहुँचा। आयोग ने अपने दिसम्बर 2001 के निष्कर्षों एवं सिफारिशों में अन्य बातों के अतिरिक्त स्पष्ट लिखा कि[1]

■ अनुसूचित क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के लिए उस नीति और उन प्रक्रियाओं का पालन नहीं किया गया है जो समय-समय पर निर्धारित की गयी हैं।

■ स्थल का चयन उपलब्ध विकल्पों के गुण-दोष पर विचार किए बिना ही किया गया है। वर्तमान भूमि की गुणवत्ता के बारे में तथ्यों की गलत प्रस्तुति की गयी प्रतीत होती है। कितनी जमीन की जरूरत होगी इस पर भी विचार नहीं किया गया है। निर्णय स्वेच्छाचारिता से लिया गया है।

■ स्वयं राज्य सरकार द्वारा बनाए विधिक मार्गदर्शक सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया है। भू-अर्जन के पहले ग्राम सभा से आज्ञापक सलाह के मामलें में जानकारी आधारित सलाह नहीं ली गयी। ग्राम सभाओं में उनकी राय को अभिव्यक्त करने वाले औपचारिक संकल्प नहीं पारित किए गए। जैसा कि मार्गदर्शक सिद्धांतों के तहत आज्ञापक है और ग्राम सभा की बैठकों के बारे में विधिक नियमों में अनिवार्य है।

■ यह दर्शाने के लिए युक्तियुक्त साक्ष्य हैं कि आज्ञापक सलाह के बारे में ग्राम सभाओं के रिकार्ड को गढ़ा गया है। इसके अलावा प्रशासनिक प्रतिवेदनों के रूप में झूठे रिकार्ड तैयार किए गए हैं।

परन्तु इसके पश्चात् भी जबरदस्ती व प्रलोभनों के रास्ते भूमि पर कब्जा करने का क्रम जारी है। कमोवेश यही कहानी सभी आदिवासी क्षेत्रों की है। अपनी प्राचीन संस्कृति व मजबूत भाषा के पश्चात् भी वे अपने आपको विस्थापित होने से बचा नहीं पा रहे हैं। संथालों का ही उदाहरण देखें। संथाल भाषा-भाषी लाखों हैं। उनकी संस्कृति बहुत धनी है। पर आज संथाल देश के महानगरों में अनियत मजदूर बनने के लिए मजबूर हैं। इन जनजातियों की जमीन से बेदखली व्यापक स्तर पर हुई है और हो रही है। जंगलों

के कटने से जंगल तथा जंगल की पैदावार पर आश्रित जनजातियाँ जीविका हेतु भटक रही हैं। बड़ी नदी घाटी परियोजनाओं, खानों से खनिज पदार्थों के खनन ने लाखों आदिवासियों को अपनी जगह से उखाड़ फेंका है तथा उनकी जीविका एवं उनकी संस्कृति के संरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं की है। पूर्वी भारत में तो बॉक्साइट और लौह अयस्क जैसे खनिजों के खनन से वनों तथा पानी के श्रोतों का विनाश हो रहा है। कुल मिलाकर भारत की जनजातियाँ सूरतविहीन जन समूह बन गई हैं। मुख्यधारा के समाजों से कटी इन जनजातियों को आरक्षण का भी लाभ नहीं मिल पा रहा है, यद्यपि इनके नाम पर सरकार द्वारा करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है।

हमारे देश में मानव समुदाय का एक ऐसा हिस्सा भी है जिसे आज भी तथाकथित अपराधी जनजाति के रूप में चिन्हित किया जाता है। जब भी कभी, कहीं चोरी होती है, हत्या की वारदात होती है इन जनजातियों का हाथ होने की खबरें छपती हैं। पुलिस और प्रशासनिक तन्त्र भी इस आशय के बयान जारी करते हैं। और फिर इन समुदाय के लोगों की गिरफ्तारियाँ शुरू होती है। चोरी कबूल करवाने के लिए या शंका के कारण की गयी गिरफ्तारी से सूचनाएँ एकत्रित करने हेतु इनकी पिटाई का दौर शुरू हो जाता है। इन यातनाओं के दौरान सलाखों के पीछे इनकी मौत भी हो जाती है। यह सब हमारे समाजों के बीच बने थानों, चौकियों में ही होता है। पर हम सभी पुलिस द्वारा हमारी सुरक्षा हेतु की गयी कार्यवाही मानकर इसे उचित ठहराते हैं और मौन स्वीकृति प्रदान करते हैं।

दिल्ली के पूर्व आयुक्त श्री विजय करण ने, जिनकी छवि एक मानवतावादी पुलिसकर्मी की है, अपनी पुस्तक 'दण्ड और जेल' ('Punishment and the Prison') में लिखा है[2]

"In most urban centres, criminal tribes like the Bawarias, the Pardis (sic) and the sansis still strike at the dead of night, robbing homes and bludgeoning their inmates to death. So the Police still routinely rounds them up, counter bludgeons them to extract informations and not uncommonly kills some of them in custody. Though statistics are not available, they will, if compiled show that not an insignificant number of victims of custodial violence belong to these criminal tribes."

(अर्थात् "अधिकतर शहरी केन्द्रों पर अपराधी जनजातियों जैसे बावरिया, पारधी और साँसी आज भी रात के सन्नाटे में हमला करते हैं, घरों को लूटते हैं तथा लाठी मार-मार कर बाशिन्दों को मौत के घाट उतार देते हैं। अतः पुलिस, अपने नित्यक्रम में उन्हें पकड़ती हैं, हाल के अपराध पर जानकारी प्राप्त करने हेतु लाठियों से पिटाई करती है और इस प्रक्रिया में यह असामान्य नहीं कि कुछ को हवालात में ही जान से मार देती है। यद्यपि आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं पर यदि इन आँकड़ों को एकत्रित किया जाए तो वे दर्शाएंगे कि हवालात में हुई हिंसा में मरने वालों में अपराधी जनजाति के लोगों की संख्या उपेक्षणीय नहीं है।")

यदि हम अपराधी जनजाति शब्द के प्रयोग के विरोध को छोड़ भी दें तब भी उपरोक्त लेखन से यह स्पष्ट है कि इन लोगों को शंका पर गिरफ्तार किया जाता है और हवालात में निर्ममता से हुई पिटाई से उनकी मौतें भी हो जाती है। और यह भी कि इन मरने वाले लोगों की संख्या उपक्षेणीय नहीं है।

पर ये कौन लोग हैं? भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियाँ/अनुसूचित जनजातियाँ तो हैं पर तथाकथित अपराधी जनजातियाँ नहीं हैं, जबकि इनकी आज अनुमानित जनसंख्या लगभग 4-5 करोड़ है। और इन जनजातियों की कहानी भारत के उपनिवेश के शुरूआती और मध्य दौर की ओर जाती है। उस समय जो भी ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करता था वह अपराधी करार दिया जाता था। उदाहरणार्थ-भील जनजाति। हम सभी भीलों के गौरवपूर्ण इतिहास से परिचित हैं। भीलों के पूर्वजों ने कंधे से कंधा मिलाकर महाराणा प्रताप के साथ लड़ाई लड़ी थी। भील 19वीं सदी के शुरुआत में खानदेश तथा नर्मदा नदी के तट पर ब्रिटिश शासकों से लड़े। उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 110 के तहत दंडित किया गया तथा अपराधी घोषित किया गया।

ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा अपने अधीन देश के निवासियों को शंका की दृष्टि से देखना स्वाभाविक ही था। साथ ही स्थावर समाज की मानसिकता वाले ब्रिटिश शासकों के लिए भारतवर्ष की घुमन्तू जनजातियाँ शक के दायरे में थीं। साम्राज्य ने अपने शुरुआती शासन के बाद जंगलों को राज्य

की सम्पत्ति घोषित कर दिया। जंगल तथा जंगल उत्पाद पर आश्रित जनजातियाँ अब अपने अस्तित्व को बनाए रखने हेतु लड़ने के लिए बाध्य थीं। 1857 के संग्राम के बाद तो ब्रिटिश सरकार भ्रम की स्थिति में आ गयी। वह अनेक वर्गों को शंका की दृष्टि से देखने लगी। इस तरह बंजारा जातियाँ-उपजातियाँ, नट, फकीर, भील, विघटित सैनिक टुकड़ियाँ इस वर्ग में शामिल हो चुके थे। इन जातियों के नियमन हेतु ब्रिटिश सरकार ने 'अपराधी जनजाति अधिनियम 1871' लागू किया। कालान्तर में इस सूची में इन जनजातियों की संख्या बढ़ती गयी। अब तक इस सूची में बहेलिया, मछुआरे, सड़कों पर घूम-घूमकर गाने वाले लोग, तालाब बनाने की कला में पारंगत व्यक्तियों सहित अनेक जातियों, जनजातियों के लोग शामिल हुए। इस तरह आगे आने वाले वर्षों में इस सूची का विस्तार हुआ तथा साथ ही नियमों में संशोधन भी हुए। 1924 ई. में अपराधी जनजातियों से संबंधित नियमों को एकत्रित कर 'अपराधी जनजाति अधिनियम 1924' लागू किया गया। जहाँ 1871 का अधिनियम सीमित दायरों में मान्य था, 1924 का अधिनियम समस्त ब्रिटिश भारत पर लागू था। 1924 के अधिनियम के अंतर्गत अब अपराधी घोषित करने का अधिकार प्रांतीय सरकारों को दे दिया गया था। अब इन जनजातियों की संख्या 180 के करीब पहुँच चुकी थी।

किन विशिष्ठ परिस्थितियों में इनमें से प्रत्येक जनजाति को अपराधी घोषित किया गया यह अलग से शोध का विषय है। परन्तु ब्रिटिश शासन का विरोध, विरोधियों को सहयोग तथा समर्थन देना, घुमन्तू प्रवृत्ति, जंगलों पर ब्रिटिश सरकार के अधिकार का विरोध करना तथा पहले ही अपराधी जनजाति घोषित की गई जाति के साथ रोटी-बेटी का संबंध स्थापित करना– यह कुछ आम कारण थे इन जनजातियों के अपराधी जनजाति करार दिए जाने के। यद्यपि इन जनजातियों के लोगों द्वारा अपने अस्तित्व बनाए रखने की लड़ाई में यदा-कदा अपराध करने को नकारा नहीं जा सकता है। परन्तु उनके 'जन्मजात अपराधी' होने के कलंक को, जो कि ब्रिटिश सरकार ने उनके माथे पर लगाया, का कोई औचित्य इतिहास में दिखाई नहीं पड़ता।

बाद के दिनों में ब्रिटिश सरकार ने, सुधार के अपने घोषित उद्देश्य के अन्तर्गत, इन जनजातियों के लोगों को काँटेदार तारों से घिरी दमनकारी बस्तियों में रखना प्रारम्भ किया तथा बिना आज्ञा बाहर आने-जाने पर पाबन्दी लगा दी। आगे चलकर इन्हीं बस्तियों से ब्रिटिश सरकार अपना साथ देने वाले जमींदारों को सस्ते मजदूर मुहैया कराने लगी।[3] इन बस्तियों में इन्हें तरह-तरह की यातनाएँ भी दी जाती थीं। कालान्तर में ये पूर्णतया साधनविहीन हो गए और पुलिस तथा सरकार द्वारा इनका उत्पीड़न भी जारी रहा। यही कारण था कि आजादी की लड़ाई के दौरान इनमें से कोई बड़ा नेतृत्व उभरकर सामने नहीं आया। और शायद यही कारण है कि संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान बनाए गए पर इन जनजातियों का कोई जिक्र नहीं आता।

इन जनजातियों को अगस्त 1952 में, यानी आजादी के पाँच वर्ष बाद अनधिसूचित (विमुक्त) किया गया। पर जात-पात से ग्रसित हमारी मानसिकता आजादी के साथ बदली नहीं थी। इसी मानसिकता के चलते कई प्रदेशों ने ''अभ्यासिक अपराधी अधिनियम' लागू कर इन जनजातियों के लोगों को मुख्य धारा से अलग कर उनका उत्पीड़न भी जारी रखा। इसका एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है।

विगत दिनों (27 फरवरी, 2001) हमने छारानगर, अहमदाबाद में छाराओं के साथ एक दिन बिताया। गुजरात में छारा तथाकथित अपराधी जनजाति में आते हैं। वर्तमान छारानगर अहमदाबाद के सरदार ग्राम रेलवे स्टेशन के वैस्टर्न रेलवे पार्किंग जोन के बगल में स्थित है। आजादी से पूर्व इसी पार्किंग जोन स्थान पर ही अंग्रेजों द्वारा बसाई गयी कँटीले तारों द्वारा घिरी दमनकारी बस्ती थी। इस बस्ती के छाराओं को, 1952 में विमुक्ति के बाद, इसी स्थान के निकट ही, वर्तमान छारानगर में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े दिए गए। वर्तमान छारानगर के चारों ओर आज कँटीले तार तो नहीं हैं पर छारा लोग आज भी समाज से पूर्णतः ब्रहिष्कृत हैं। जमीनों का पट्टा आज भी उनके नाम नहीं है। अतः वे कभी, किसी समय भी उजाड़े जा सकते हैं। आम तौर पर जनजातियों में शिक्षा का स्तर काफी निम्न

पाया जाता है। पर अपवाद स्वरूप छारानगर में अनेक शिक्षित लोग हैं। इसके पश्चात भी छारा लोग काम धंधों से वंचित हैं। हमें बताया गया है कि यहाँ लगभग एक सौ वकील हैं। परन्तु सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण इन्हें काम नहीं मिल पाता। छारानगर के पढ़े-लिखे नवयुवक भी जीविकोपार्जन की संभावनाओं से वंचित बेकार घूम रहे हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में इनके सामने देशी शराब बनाने तथा यदा-कदा चोरी जैसे अपराध की ओर अग्रसर होने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होता। कुछ युवकों ने शराब का धंधा छोड़कर दुकान खोली थी पर पुलिस ने उन्हें गिरफ्तारी की धमकी देकर उनकी दुकानें बन्द करवा दी तथा शराब के धंधे में जाने के लिए मजबूर किया। यहाँ यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि इन जातियों के लोगों की गिरफ्तारियाँ शक की बुनियाद पर बिना किसी वारंट के होती हैं। ये बराबर शंका के दायरे में रहते हैं और पुलिस का साया बराबर इनके पीछे-पीछे चलता है। इस तरह ये लोग खौफ का जीवन व्यतीत करते हैं। शराब बनाने का सबसे बड़ा दुष्परिणाम इनके स्वयं के जीवन पर पड़ता है। हमें बताया गया कि छारानगर में लगभग तीस प्रतिशत युवा महिलाएँ विधवा हैं। ये काम के लिए दूर तो जा नहीं सकती, मुख्य धारा का समाज उन्हें स्वीकार भी नहीं करता। अतः वे शराब बनाने तथा कभी-कभी चोरियाँ करने के लिए भी मजबूर हो जाती हैं जिसका कारण पूर्णतः आर्थिक होता है।

घुमन्तू कबीलों की स्थिति तो और भी दयनीय है। जनसंख्या बढ़ने के कारण बस्ती घनी हो गयी, जंगल कट गए, जीवन संघर्ष बढ़ गया, भला इन घुमन्तू जातियों को कौन पूछे। आज इनके जीवन में दुःख ही दुःख है। राजस्थान में सरिस्का अभयारण्य से जुड़ा एक गाँव है हल्दीना[4]। हल्दीना गाँव की हद में बंजारा समाज के एक सौ पचास परिवारों ने, 1991 में रणजीत चौहान के नेतृत्व में स्थायी आवास बनाया। स्थानीय समाज, पूँजीपतियों एवं अन्य सक्षम वर्ग के बहकावे में बराबर विरोध करता रहता है। पर वे डटे हैं। संयोगवश इस बीच इनके मुखिया सेठा पालीवाल की 81 वर्ष की उम्र में स्वाभाविक मौत हो गयी। सारे हल्दीना गाँव के लोगों ने, कुछ बाहरी ताकतों के इशारे पर, मृतक सेठा के गाँव में दाह संस्कार का विरोध किया यहाँ तक कि होने नहीं दिया। परिणामस्वरूप सेठा पालीवाल के मृत शरीर को लेकर सभी समुदायवासी दूर-दूर तक इस अवसर की तलाश में घूमते रहे कि उसे मिट्टी देने का अवसर मिले। इस तरह इसी देश के सेठा पालीवाल को मरने के बाद मिट्टी देने के लिए जमीन भी न मिल सकी।

हमारी विकल्प की अवधारणा है आमूल परिवर्तन। अर्थात् वर्तमान व्यवस्था को ध्वस्त कर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण जिसमें संसाधनों पर समाज का अधिकार हो ताकि व्यक्ति व समाज दोनों को अपने अस्तित्व व अस्मिता की लड़ाई न लड़नी पड़े। हम मात्र भौतिक संसाधनों की ही बात नहीं कर रहे हैं अपितु उस वैकल्पिक समाज की बात कर रहे हैं जिसमें कि जाति, धर्म तथा नारी उत्पीड़न का समूल नाश हो चुका हो।

सारांशतः संविधान के अनुसूचित जनजातियों से संबंधित विभिन्न नियमों, अधिनियमों तथा इस मुद्दे की राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में सर्वमान्यता के पश्चात भी आजादी के विगत पचपन वर्षों में जनजातीय समाज और भी हाशिए पर गया है। इस समाज की उसके नैसर्गिक संसाधनों से बेदखली हुई है तथा बड़े भारी स्तर पर उनका विस्थापन हुआ है। अपनी मजबूत भाषा एवं संस्कृति के पश्चात् भी आज यह समाज अपने अस्तित्व व अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। आज उनकी भाषा, संस्कृति और साहित्य विलुप्त होने के कगार पर है। इतिहास साक्षी है कि अमेरिका के आदिवासियों के ध्वंस के साथ-साथ उनकी भाषाएँ व संस्कृतियाँ भी विनष्ट हो गयीं। तथाकथित अपराधी जनजातियों के लोग तो जनता की भीड़ द्वारा नोचे (Lynching) जाने के डर तथा पुलिस व प्रशासन के

खौफ के साये में जी रहे हैं। ये संसाधन विहीन लोग असह्य दुःख का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

स्पष्टत: वर्तमान व्यवस्था जनजातीय समाज तथा उन समाजों के लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में सहायक नहीं हैं, अपितु बाधक हैं। यह व्यवस्था जनजातीय भाषा, संस्कृति तथा उसकी अस्मिता की रक्षा में अक्षम साबित हुई है। अत: यह स्थिति विकल्प की माँग करती है।

विकल्प की बात करने से पहले हमें विकल्प की अवधारणा पर विचार करना चाहिए। आज हमारे बीच वैकल्पिक राजनीति, वैकल्पिक मीडिया, वैकल्पिक शिक्षा इत्यादि के रूपों में विकल्प की बातें होती हैं। समाजों के विकल्प के रूप में कोई वर्तमान समाज व्यवस्था को बदलकर एक नयी सामाजिक व्यवस्था को विकल्प मानता है तो कुछ अन्य सुधारों के साथ वर्तमान व्यवस्था बनाए रखने को विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हैं। विकल्प के तौर पर 'राम राज्य' के रूप में अतीत की ओर लौटने की भी बातें सुनाई पड़ती हैं। और इसके ठीक विपरीत वैश्विक पूँजीवाद अपनी निर्वैकल्पिकता का भी ढिंढ़ोरा पीट रहा है। अत: विकल्प की अवधारणा स्पष्ट होनी चाहिए।

बरसों से दिल की तमन्ना थी कि आजादी की हवा में सांस लेगें, लेकिन सभी आशाएँ नाकारा साबित हुयीं। वही छुपने-छुपानें की जिन्दगी, एक जगह से दूसरी जगह भागने की जिन्दगी, गंदी से गंदी गालियाँ सुनने की जिन्दगी, समाज के दुत्कार की जिंदगी, साये की तरह पीछे पड़ी पुलिस के शक की जिंदगी।''

हमारी विकल्प की अवधारणा है आमूल परिवर्तन। अर्थात् वर्तमान व्यवस्था को ध्वस्त कर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण जिसमें संसाधनों पर समाज का अधिकार हो ताकि व्यक्ति व समाज दोनों को अपने अस्तित्व व अस्मिता की लड़ाई न लड़नी पड़े। हम मात्र भौतिक संसाधनों की ही बात नहीं कर रहे हैं अपितु उस वैकल्पिक समाज की बात कर रहे हैं जिससे कि जाति, धर्म तथा नारी उत्पीड़न का समूल नाश हो चुका हो। ऐसी आमूल चूल परिवर्तन की बात से कुछ लोगों को संस्कृति पर चोट का अंदेशा हो सकता है। पर राहुल सांकृत्यायन ने इस शंका का निवारण कर दिया है। किशोरी दास वाजपेयी को लिखे पत्र (8 दिसम्बर, 1956) में उन्होंने कहा, ''विचारों में कट्टर नास्तिक पर भारतीय संस्कृति का अनन्य उपासक होने के नाते हमारे विचारों में भी एकता-अनेकता है। आज के समाज के ढाँचे को बिल्कुल बरबाद कर देने पर भी हमारी संस्कृति को कोई हानि नहीं पहुँचेगी यह मेरा विश्वास है ....'' (5)।

इस विकल्प की तलाश में हम विकास की ही बात सर्वप्रथम लेते हैं। विकास की जिस अवधारणा के तहत आजादी के इन पचपन वर्षों में जनजातीय समाज विस्थापित हुआ, हाशिए पर पहुँचा और महानगरों में भटकते हुए अनियत मजदूर बनने के लिए मजबूर हुआ उसके विकल्प की आवश्यकता है और उस विकल्प की तलाश होनी चाहिए। यह वैकल्पिक लेखन की आवश्यकता का एक महत्वपूर्ण कारण है। यह दर्शाता है कि दोनों समाजों की विकास की अवधारणा में अन्तर है। एक की विकास अवधारणा दूसरे के विनाश का कारण बना हुआ है। विकास के नाम पर एक को उजाड़कर इन्द्रपुरियों का निर्माण किया जा रहा है और उजड़े और विस्थापित समाज के लोगों को नालियों के इर्द-गिर्द रहने के लिए मजबूर किया जा रहा है। आज बाँध, बिजली परियोजनाओं, खनन इत्यादि जैसे विकास के नाम पर किए गए कार्यों के चलते लाखों-करोड़ों जनजातीय समाज के लोग विस्थापित हो शहरों में अनियत मजदूर बन गए हैं। पर उनकी जीवन पीड़ा, उनकी अनुभूतियाँ, उनका संघर्ष साहित्य में अभिव्यक्त नहीं हो रहा है। अत: वैकल्पिक लेखन द्वारा ही इतनी बड़ी संख्या में लोगों का दुःख-दर्द प्रस्तुत हो सकेगा।

दूसरी बात। मुख्य धारा की साहित्य रचना और आँचलिक भाषाओं के बीच आदान-प्रदान चलता रहा है। हमारी परंपरा में साहित्य तथा संस्कृति की पहचान मात्र लिखित स्वरूप अथवा मौखिक स्वरूप में सीमित नहीं रही हैं। परन्तु आज अनेक आँचलिक भाषाओं की पहचान बोली

के रूप में की जाती है। इनमें जनजातियों द्वारा बोली जाने वाली सारी भाषाएँ (मणिपुरी को छोड़कर) बोलियों के रूप में ही आज पहचानी जाती है। इनमें से कोई भी भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित नहीं की गयी, जबकि इन भाषाओं के बोलने वालों की संख्या लाखों में है। इनमें अपनी साहित्य रचना जैसे गीत, कथाएँ, काव्य सभी अंतर्भूत हैं। यह साहित्य इन जाति, प्रजाति के लोगों के सामाजिक एवं भौतिक, धार्मिक शैली का अविभाज्य अंग है। आज यह सारा साहित्य विलुप्त होने के कगार पर है। यद्यपि इसके संरक्षण की दिशा में कुछ प्रयास हुए हैं। पर इसके लिए व्यापक प्रयास की आवश्यकता है। यह प्रयास इन जनजातियों द्वारा ही सफल हो सकेगा। बोडो भाषा के संरक्षण व विकास की कहानी इसका ज्वलंत प्रमाण है।

तीसरी व प्रमुख बात यह है कि जनजातियों का दुःख-दर्द उनके अपने कथन लेखन में ही व्यक्त हो पाता है। संभव है मुख्यधारा के लेखक उसी घटना पर सुन्दर साहित्यिक रचना करने में सक्षम हों पर इन जनजातियों की वस्तु स्थिति का सही चित्रण उन्हीं की जुबान या कलम द्वारा संभव है। उदाहरणार्थ देखें छारानगर की 77 वर्षीय प्राँची श्यामजी बाई, जो कि अंग्रेजों के राज्य में धुलिया तथा अहमदाबाद की घेरेबंद बस्तियों में रह चुकी हैं, के लेख का निम्नलिखित अंश[6]।

"जिंदगी के साथ सही संघर्ष अब शुरू हुआ था। सरकार ने हमें विमुक्त तो कर दिया लेकिन घर का पालतू कुत्ता जैसे सड़ गया हो और उसे जल्द से जल्द निकालना जरूरी हो जाता है वैसा ही सलूक सरकार ने सेटलमेंट (घेरेबन्द बस्ती) में बन्द सभी जनजातियों के साथ किया। हम लोगों के बीच में जाना चाहते थे। लेकिन अब हमें अपने ही देशवासियों के साथ संघर्ष करना था। आखिर कुछ काम न मिलने पर हमारे पति और सभी छारों ने दारू बनाने और चोरियाँ करने का काम शुरू किया। क्या करें पेट के लिए कुछ तो करना ही था। अब समाज और पुलिस हमारी दुश्मन थी। आजाद भारत में कम-से-कम हमारे लिए कोई बदलाव नहीं आया था। सरकार ने हमें विमुक्त कर जैसे हमेशा के लिए अपने से और समाज से मुक्त कर दिया।

बरसों से दिल की तमन्ना थी कि आजादी की हवा में सांस लेगें, लेकिन सभी आशाएँ नाकारा साबित हुयीं। वही छुपने-छुपाने की जिन्दगी, एक जगह से दूसरी जगह भागने की जिन्दगी, गंदी से गंदी गालियाँ सुनने की जिन्दगी, समाज के दुत्कार की जिंदगी, साये की तरह पीछे पड़ी पुलिस के शक की जिंदगी।"

उपरोक्त लेखन से इन जनजातियों के जीवन संघर्ष की जो यथार्थवादी तस्वीर प्रस्तुत होती है, वह इस वैकल्पिक लेखन द्वारा ही संभव हो सकती है। जनजातीय समाजों की अनेकानेक समस्याओं की मुख्यधारा के समाजों को अनुभूति नहीं है। अतः सत्य के प्रत्यक्षीकरण हेतु इस तरह का वैकल्पिक लेखन अपरिहार्य है।

आज भारत की जनजातियाँ सूरतविहीन हो चुकी हैं। सारांशतः वर्तमान व्यवस्था जनजातीय व्यक्ति एवं समाज तथा उसकी भाषा एवं संस्कृति के रख-रखाव में सहायक नहीं है बल्कि बाधक बन गयी है। अतः विकल्प की तलाश होनी ही चाहिए। समाज की जन पक्षधर व वैकल्पिक शक्तियों को अपनी विकल्पों का निर्माण करना ही होता है। यह वैकल्पिक लेखन के माध्यम से ही संभव है। ■

संदर्भ :

(1) *ऐतिहासिक लोकतांत्रिक संवाद की ओर, डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, सहयोग पुस्तक कुटीर, 2001, पृ. 29-30,*

(2) *Branded by Law-Dilip D'souza, Penguin Book, 2001, PP-99, 2001 Vijaya Karan, 'Punishment and Prison : Indian and International Perspectives', Sage Publication, New Delhi, 2000, PP 214-15, 221*

(3) *Dishonoured by History-'Criminal Tribes' and British colonial Policy, Meena Radhakrishna, Orient Longman, 2001, Introduction*

(4) *अम्चली में घुमन्तू कबीलों का मुक्ति अभियान-रतन कात्यायनी, बूधन-3, दिसम्बर 2001 पृ. 21*

(5) *'सम्मेलन पत्रिका, भाग-68, संख्या 1-2, 1999 (द्वितीय आवृत्ति), पृ. 162*

(6) *जैसा संदर्भ (4) पर दिया गया। पृ. 36*

डॉ. के.एम. मैत्रि, रीडर, जनजातीय अध्ययन विभाग, कन्नड विश्वविद्यालय, हंपी, का जन्म एक गोंड जनजातीय परिवार में हुआ। इन्होंने अपने शोध प्रबंध में 'बीदर जिले की गोंड जनजाति का सामाजिक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य पूरा किया। अकादमी कार्यों से जुड़े डॉ. मैत्रि ने अनेकों जनजातियों का गहन अध्ययन किया है। उनके द्वारा लिखित आलेख लगभग दस पुस्तकों में संगृहीत हैं। उन्होंने बेदा, जंगम, टोकरेकोली, पारधी इत्यादि पर शोधकार्यों का भी मार्गदर्शन किया। 'कन्नड साहित्य परिषद', 'बीदर बैकवर्ड क्लास एसोसिएशन' तथा भारत के कई जनजातीय संगठनों द्वारा सम्मानित डॉ. मैत्रि को उनकी पुस्तक 'कुमारारमा' और कृष्णगोला की जनजातीय महाकाव्य के लिए कर्नाटक जनपद और यक्षगण अकादमी, बंगलोर द्वारा 1997 का सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार दिया गया। डॉ. मैत्रि एक सक्रिय कार्यकर्त्ता भी हैं। वे टेन्टों में रह रहे जनजातियों के पुनर्वसन तथा राजगोंड वैद्यों के संगठन के कार्यों से जुड़े हुए हैं।

कर्नाटक जिले के राजगोंड जनजातियों की विलुप्त होती औषधीय दक्षता

■ के. एम. मैत्रि

मानव समाजीकरण का आरम्भिक युग आदिम घुमन्तू जनजातियों से प्रारम्भ होता है। घुमन्तू प्रणाली के कुछ मुद्दे स्थावर (स्थाई) जीवन के साथ हल हो गए। वास के ये आरम्भिक स्थान ही आज के गाँव हैं या गाँव क्षेत्र हैं। विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क में आकर कुछ जनजातियाँ सांस्कृतिक तौर पर अलग हो गयीं और वे अपनी सांस्कृतिक पहचान खो दीं। परन्तु आज भी हम कुछ घुमन्तू जनजातियों को देख सकते हैं जो कि गाँव-गाँव या गाँव से शहर में घूमती रहती हैं, और कुछ अन्य शहरी परिवृत्त में घूमते रहते हैं। राजगोंड जनजाति इन्हीं में से एक है। यह अपने जीवनयापन के लिए जड़ी-बूटियों की दवाई पर निर्भर हैं। अनेकों पश्चिमी और भारतीय समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों जैसे कि सर हर्बट रिज़ली, एल्विन वेरियर, हट्टन, हिस्लौप, सिर्रिंग, हेमेन्डरौफ, सेतु माधव राव, ठक्कर बाबा, जी.एस. घुरिए, मजूमदार, एस.एस. शशि, के. एस. सिंह, बी.एच. मेहता, एम. एल. पटेल इत्यादि, ने भारत की गोंड तथा राजगोंड जनजातियों का विस्तृत अध्ययन किया है।

(1) **उत्पत्ति** : गोंडो की उत्पत्ति अस्पष्ट है तथा उनकी परम्पराएँ उनके जनजातीय संबंधों पर कोई रोशनी नहीं डालती है। हिस्लॉप के कथनानुसार, 'गोंड' या 'गुंड', 'कोंड' या 'कुंड' के ही रूप हैं। दोनों ही रूप मुख्यतया शायद तेलगू भाषा के पहाड़ के समानार्थी हैं। अतः कोंडावलु या पहाड़ी लोगों का द्योतक है। इन लोगों का यह नाम युगों से होगा क्योंकि प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता टॉलमी (150 ई.) ने इसका जिक्र गोंडलोई नाम से किया है।

जनरल कनिंघम के शब्दों में 'गोंड' शब्द की व्युत्पत्ति 'गाउन्ड' शब्द से हुई है जो कालान्तर में गोंड बन गया। बिट्ठल सिंह धुरवे का मानना है कि गोंड शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। जैसे कि गो+एण्ड = गोंड। 'गो' अर्थात 'पृथ्वी' तथा 'एण्ड' अर्थात 'पुत्र', अर्थात पृथ्वी पुत्र या धरती के पुत्र।

(2) **आख्यान/कहावत** : एक बहुप्रचलित आख्यान के अनुसार इस जनजाति का संबंध प्रसिद्ध महाभारत के राजकुमार भीमसेन तथा युवती राक्षसी हिडम्बा के साथ है। कहा जाता है कि हिडम्बा ने एक साथ पाँच बच्चों को जन्म दिया और इस अप्राकृतिक घटना से उसे इतनी घृणा हुई कि उसने इन सभी अबोध बच्चों को उनके किस्मत पर छोड़ दिया। ऐसी असहाय स्थिति में ये बच्चे महादेव को मिले इनके हृदय में उनके लिए दयाभाव पैदा हुआ और उन्होंने इन बच्चों को पार्वती की देख-रेख में कर दिया। पार्वती ने इन अबोध बच्चों की जिम्मेदारी ली और उन्हें

अपने बाएं स्तन से दूध पिला कर पालन-पोषण शुरू किया। परन्तु ईश्वरीय देख-रेख भी इन बच्चों की जन्मजात नरभक्षी प्रवृत्ति को कम करने में सफल नहीं हुई। ये दानवीय बच्चे दूध के साथ पार्वती का खून पीने लगे जिससे की नित्य प्रति पार्वती के शरीर से खून घटने लगा। इससे चौंक कर महादेव ने इन दुष्टों को एक पहाड़ की गुफा में बन्द कर दिया। यहाँ से पेड्लिंगू नामक एक मनीषी ने उनका उद्धार किया। वे उनके गुरु बने। उन्होंने उनके पूर्व इतिहास की जानकारी दी और पूर्वजों की पूजा के तरफ प्रेरित किया। इनमें से चार बड़े भाई इस जनजाति के चार मुख्य अनुभागों के संस्थापक बने; (1) सतदेव (सात उपदेवताओं–पाँच पाण्डवों, कुंती और द्रौपदी के पूजा करने वाले); (2) सहदेव (छः उपदेवताओं–पाँच पाण्डव और उनकी पत्नी द्रौपदी के पूजा करने वाले); (3) पंचदेव (पाँच उपदेवताओं-पाँच पाण्डवों के पूजा करने वाले); (4) चार देव (चार पाण्डवों के पूजा करने वाले, सबसे छोटे को छोड़ दिया गया)। सात महाद्वीपों में से पाँच को गोंडवाना प्रदेश कहा जाता है जैसे कि अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका, एशिया और अंटार्कटिका। इन पाँचों महाद्वीपों की जमीन के लक्षण लगभग एक जैसे हैं। अत: इन्हें गोंडवाना प्रदेश कहा जाता है।

जड़ी-बूटियों के राजगोंड व्यापारी, (हरिहर, दावणगेरे) कर्नाटक

घुमन्तू गोंड धीरे-धीरे मध्य भारत में बस गए तथा यहाँ उन्होंने 52 राज्यों को स्थापित कर राज्य किया। इन घुमन्तू गोंडों की 42 उपजातियाँ हैं जिसमें घुमन्तू राजगोंड एक है।

(3) **राजगोंड जनजाति की उत्पत्ति :** प्रारम्भ में राजगोंड गोंड राजा के वैद्य थे। जब गोंड जनजातीय राज्य मुस्लिम शासकों द्वारा नष्ट कर दिए गए तो राजवैद्य (जड़ी-बूटी दवाईयों के विक्रेता) राजगोंड कहे जाने लगे। राज्य के छिन जाने के बाद राजवैद्य घुमन्तू हो गए। ये लोग अपने जड़ी-बूटी की दवाईयों के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे। अत: वे घूम-घूमकर इन जड़ी-बूटियों को बेचने लगे। भारत में रेलों के आने के बाद ये राजवैद्य अपनी जड़ी-बूटी बेचने के लिए रेलों द्वारा यात्रा भी करने लगे। इससे पूर्व ये लोग घोड़ों की मदद से घूमते थे। आज हम इनमें से अधिकांश को रेलवे स्टेशनों के समीप टेन्टों में रहते हुए पाते हैं। क्रमश: राजगोंड गोंड जनजाति से अलग-थलग हो गए। यह भारतवर्ष का एक बड़ा जनजातीय समुदाय है। भारत की राजगोंड जनजाति धीरे-धीरे, अपनी मातृभूमि मध्य भारत के गोंडवाना प्रदेश से दूर शहरीवृत्तों में बस गई। इनके मुख्य शहरी बसाव कर्नाटक में बंगलोर, बीदर तथा हरिहर; आन्ध्रप्रदेश में अनन्तपुर, काकीनाडा और कुकाटपल्ली; महाराष्ट्र में अहमदनगर, अमरावती, मुम्बई, धुलिया, जलगाँव, लातूर, नागपुर, नासिक और पुणे; मध्यप्रदेश में भोपाल, खण्डवा तथा उज्जैन; तमिलनाडु में कोयम्बटूर; राजस्थान में अजमेर; गुजरात में भावनगर और दिल्ली व बेवास हैं। भारतवर्ष में घुमन्तू राजगोंडों के लगभग दो हजार परिवार हैं।

(4) **आन्तरिक ढाँचा :** कर्नाटक के राजगोंड पाण्डवों की नहीं अपितु अपने देवताओं की पूजा करते हैं।

विजातीय विवाह नियम का कठोरतापूर्वक पालन किया जाता है। इस तरह एक व्यक्ति अपने ही गोत्र की स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता। गोत्र का नाम आदमी के गोत्र के नाम से चलता है। अधिकतर राजगोंड अपने गणचिन्हों को भूल चुके हैं। वे अपनी मातृभाषा गोंडी का व्यवहार करते हैं।

नीचे दी गई तालिका में कर्नाटक के राजगोंड जनजाति के विजातीय अनुभागों, उनके संस्थापकों के नाम, गणचिन्ह और उपगोत्र या परिवार का वर्णन दिया गया है।

गोत्र/वंश	संस्थापक	गणचिन्ह	उपगोत्र/वंश
चार देव	सेदमाकी	कछुआ मगरमच्छ गोह	सेदमाकी सिदम कोआ टेकम
पचदेव	कुम्भरा	साही और सारस	कुम्भरा आदे कुमरे
सहदेव	अत्रम जामकर	बाघ	(i) अत्रम (ii) गेदम (iii) पेन्डमम (iv) उक्या (v) टोडासम (vi) वाडकाडे (i) रायसिदम (ii) एतिकुम्रा (iii) कोड्डापल (iv) मारापल (v) सोलम (vi) वात्ति
सतदेव	मेषरम	नाग और साही	मेषरम धुरवे कन्नके मादावी पुष्के वल्का बावडे

(5) **अधिवास और जनसंख्या :** कर्नाटक के घुमन्तू राजगोंड मध्य भारत से स्थानान्तरित होकर आए। गोंड राजाओं के पतन के बाद वे भारत के सभी क्षेत्रों में बिखर गए। रेलगाड़ियों के आगमन के बाद इन्होंने रेल लाइनों के सहारे घूमना प्रारम्भ किया। 19वीं शताब्दी तक वे घूमने के लिए घोड़ों पर निर्भर थे। 1940 ई. के बाद वे दक्षिण भारत की ओर मुड़े और शहरी क्षेत्रों के रेलवे स्टेशनों के आसपास अस्थाई वास/स्थान बनाना शुरू किए। कर्नाटक में लेखकों और सरकारी अधिकारियों ने गलती से इन लोगों को हक्कि-पिक्कि (पारधी) जनजाति के रूप में जाना। किन्तु वे हक्कि-पिक्कि से संबंध नहीं रखते। वे लोग बंगलोर के मारुति सेवानगर में, राजगोंड कालोनी, बीदर में और हरिहर तालुका के बेल्लुडी गाँव में बसे हैं। इनके अधिवास एवं जनसंख्या का विवरण निम्नलिखित है-

कर्नाटक के राजगोंड जनजातियों की अधिवास एवं जनसंख्या-(2000)

अधिवासों के नाम	परिवारों की संख्या	जनसंख्या पु.	स्त्री.	कुल
1. मारुती सेवानगर बंगलोर	130	502	505	1007
2. राजगोंड कालोनी,बीदर	120	500	500	1000
3. राजगोंड कालोनी,बेल्लुडी, हरिहर तालुका, दावानगेरे जिला	417	490	480	970
कुल	367	1492	1485	2977

बंगलोर के मारुति सेवानगर में 20 प्लाटों का आवंटन तथा 20 मकान बनाकर 1990 में 'स्लम क्लीयरेंस बोर्ड' ने इन परिवारों को दिया। परन्तु बचे हुए 110 परिवार अत्यंत दयनीय स्थिति में टेंटों में रह रहे हैं। बीदर जिले में 75 परिवारों को 1996 में आश्रय-गृहों का आवंटन किया गया। बचे हुए 45 परिवार अभी भी टेंटों में रह रहे हैं। हरिहर तालुका के बेल्लुडी गाँव के राजगोंड कालोनी के 117 परिवार 1998 में आवंटित आश्रय-गृहों में रह रहे हैं। कर्नाटक के राजगोंड धीरे-धीरे अपने संवैधानिक

सुविधाओं का उपयोग कर रहे हैं।

(6) **भाषा और साक्षरता :** कर्नाटक के राजगोंड 'गोंडी' बोली बोलते हैं। इसके अतिरिक्त अपने औषधी कार्य के लिए हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तेलुगू, तमिल और अंग्रेजी भाषा का भी प्रयोग करते हैं। असाक्षरता के बावजूद राजगोंड जड़ी-बूटियों का बहुत अच्छा ज्ञान रखते हैं। घुमन्तू जीवन पद्धति और गरीबी इन लोगों के असाक्षरता का मुख्य कारण है। वर्ष 2000 ई. में किये गए एक सर्वेक्षण के अनुसार राजगोंड जनजाति की साक्षरता का प्रतिशत निम्नलिखित है –

कर्नाटक के राजगोंड जनजाति की साक्षरता का प्रतिशत

अधिवासों का नाम	असाक्षर	साक्षर अपारंपरिक	साक्षर प्राथमिक	साक्षर कुल
1. मारुति सेवानगर, बंगलोर	95	3	2	5
2. राजगोंड कालोनी, बीदर	95	3	2	5
3. राजगोंड कालोनी,बेल्लुडी हरिहर तालुका, देवनगेरे	95	3	2	5
जिला औसत कुल साक्षरता	95	3	2	5

1998 के एक सर्वेक्षण के अनुसार बंगलोर में चार (1 छात्र व 3 छात्राएं), बीदर में 21 (14 छात्र व 7 छात्राएं) तथा हरिहर में मात्र एक (1 छात्र) विद्यार्थियों ने प्राथमिक विद्यालय में दाखिला लिया था। राजगोंड परिवारों में स्त्रियों की साक्षरता न्यूनतम है। उपरोक्त लिखित जगहों पर स्थाई निवास बनाने पर राजगोंड विद्यार्थियों के दाखिले में सुधार हो रहा है। लगभग 100 विद्यार्थी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

(7) **पेशा :** ऐसा विश्वास किया जाता है कि गोंड जनजाति का आरम्भिक पेशा कृषि और शिकार था। परन्तु कर्नाटक के घुमन्तू राजगोंड अपने जीवनयापन के लिए जड़ी-बूटियों के विक्रय पर निर्भर हैं। पहले ये लोग जड़ी-बूटियों को जंगलों में से इकट्ठा करते थे तथा उससे दवा बनाकर बेचते थे। परन्तु अब ये लोग जड़ी-बूटी बेचने वालों से ही खरीद लेते हैं और जरूरत की दवा बना लेते हैं। एक जमाना था जब इन्हें राजवैद्य के रूप में जाना जाता था। परन्तु अब शायद ही कोई राजवैद्य जिन्दा हो और वर्तमान पीढ़ी जड़ी-बूटियों को बेचने में रुचि नहीं रखती। इस तरह इनकी जड़ी-बूटी औषधीय दक्षता का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। इनके पेशों की विस्तृत जानकारी निम्नलिखित तालिका में दी गई है।

पेशा	लिंग	बंगलोर	बीदर	हरिहर	कुल
1. वायर वाइंडिंग	पु.	71	97	60	228
2. जड़ी-बूटी की दवाईयां बेचने वाले	पु.	11	44	46	101
	स्त्री	9	9	21	39
	कुल	20	53	67	140
3. अंगमर्दन करने वाले	पु.	31	–	1	32
	स्त्री	1	–	1	2
	कुल	32	–	2	34
4. मसाला बेचने वाले	स्त्री	36	93	2	131
5. चाय की दुकान वाले	पु.	–	–	1	1
	स्त्री	–	–	2	2
	कुल	–	–	3	3
6. किराना स्टोरवाले	स्त्री	–	1	2	3
7. कान की सफाई करने वाले	पु.	1	–	1	2

वायर-वाईडिंग इनका पारम्परिक पेशा नहीं है। परन्तु यह कार्य बिना किसी दक्षता के किया जा सकता है। यही कारण है कि राजगोंड नौजवान सभी जगहों पर अपनी आजीविका के लिए तार से सामान बनाने का काम करते हैं। ये लॉरी, जीप तथा कार की स्टीयरिंग के वायर-वाईडिंग का काम भी करते हैं। इस कार्य के लिए ये बाजार से तार खरीदते हैं तथा सड़कों पर घूम-घूम कर काम की तलाश करते हैं।

घुमन्तू राजगोंड लोगों का पारम्परिक पेशा है- विभिन्न बीमारियों के लिए जड़ी-बूटी की दवाइयों को बेचना। ये जिन रोगों के लिए जड़ी-बूटी की दवाइयाँ देते हैं उनमें

श्री बी. नारायण राव, अध्यक्ष, कर्नाटक राजगोंड जनजाति कल्याण संघ, हरिहर के राजगोंड सभा को संबोधित करते हुए।

महिलाएँ भी जगह-जगह घूमती फिरती हैं।

स्थाई अधिवास बनाने के बाद इनमें से तीन औरतें चाय की दुकान की मालिक हैं तथा अन्य तीन औरतें किराना दुकान की मालिक। उनके इस धंधे में प्रतिदिन लगभग 100 से 200 रुपये तक की खरीद-फरोख्त होती है।

(8) जड़ी-बूटी की औषधियों की दक्षता के पुनर्स्थापना की संभावनाएँ: राजगोंड लोगों के पास खेतिहर जमीन नहीं है। एक भी व्यक्ति कृषि अथवा कृषि मजदूर के रूप में काम नहीं करता। ये लोग प्रकृतिदत्त जड़ी-बूटियों पर ही आश्रित हैं। परन्तु इन जड़ी-बूटियों को इकट्ठा करना अब अत्यन्त कठिन है क्योंकि हरेक जगह लोग तथा जंगल अधिकारी जड़ी-बूटियों के संग्रह पर रोक लगा रहे हैं।

आज इस दक्षता को निम्नलिखित तरीकों से पुनर्स्थापित किया जा सकता है –

(1) प्रत्येक अधिवास में औषधीय व्यवसाय के विशेषज्ञों का संगठन बनाना।

(2) सभी अधिवासों में जड़ी-बूटी की औषधियों के औषधालय शुरू कराना।

(3) सभी अधिवासों में जड़ी-बूटी की औषधियों के प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना करना।

(4) औषधीय दक्षता के समग्र विकास हेतु केंद्र व राज्य से प्राप्त अनुदान का उपयोग

(5) समाज और सरकार से सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा की प्राप्ति।

(6) जड़ी-बूटी की औषधियों में विश्वास जगाना।

(7) जड़ी-बूटी की औषधियों की शक्ति का

(शेष पेज 69 पर)

हैं –(1) अम्लता, (2) दमा, (3) रक्त स्राव, (4) क्रॉनिक ब्रोंकाइटिस, (5) कफ, (6) ठंड, (7) बुखार (8) पीलिया, (9) गुर्दे की पथरी, (10) ल्यूकोरिया (11) पाइल, (12) बलगम, (13) पेट-दर्द, (14) सिर-दर्द, (15) उल्टी, (16) एग्जिमा, (17) र्‍हूमैटिज़म इत्यादि।

इन दवाईयों को बेचने के लिए ये लोग पूरे कर्नाटक, गोवा, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में घूमते हैं। कई सरकारी अधिकारी भी इन दवाईयों को खरीदते हैं। जड़ी-बूटियों की औषधियों का पेशा करने वाले 140 में से कुछ दमा के विशेषज्ञ हैं, कुछ अम्लता के हैं कुछ पीलिया के। इसी तरह कुछ और भी हैं। उम्र के बढ़ने के साथ इन जड़ी-बूटी की दवाई का पेशा करने वाले लोगों का जगह-जगह घूमना कम हो जाता है। इस कारण इनकी औषधीय दक्षता का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। अंग-मर्दन करने वाले तथा कान की सफाई करने वालों को भी कुछ ऐसी जड़ी-बूटियों तथा तेल का ज्ञान होता है जो अंग-मर्दन व कान की सफाई में काम आते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है। बीदर जिले की ज्यादातर राजगोंड महिलाएँ जड़ी-बूटी एवं मसाले बेचने का काम करती हैं। ये

बुक्साओं का ह्रास होता भू-स्वामित्व

■ बलराम

हिमालय की तराई के मूल निवासी बुक्सा जनजाति के लोग रहे हैं। वर्तमान समय में भी नवगठित राज्य उत्तरांचल के नैनीताल एवं ऊधम सिंह नगर जनपद के लगभग 75 गाँवों में बुक्साओं का बाहुल्य है। भारत विभाजन के पूर्व तराई क्षेत्र में जब कृषि का कार्य वर्तमान समय की भाँति विकसित अवस्था में नहीं था, तब बुक्सा जनजाति के लोग परम्परागत ढंग से कृषि कार्य करते हुए शत-प्रतिशत भूमि के मालिक थे।

कालान्तर में जब भारत का विभाजन हुआ तो पंजाब क्षेत्र से आए हुए शरणार्थियों को तराई क्षेत्र के अविकसित एवं वनीय भू-भाग के विकास हेतु आवासित किया गया। आये हुए शरणार्थी अधिकांशत सिक्ख समुदाय से सम्बन्धित थे। ये सिक्ख शिक्षित और बुद्धिमान होने के साथ ही साथ लगनशील एवं कठोर परिश्रमी थे। इस बुक्सा बाहुल्य क्षेत्र में मेहनतकश पंजाबियों के विशाल कृषि फार्म हाऊस विकास के पर्याय बने हुए हैं। जहाँ बुक्सा अपनी प्राचीन मान्यताओं, परंपराओं, कृषि कार्य एवं स्वच्छन्द विचरण के आदी थे वहीं इन परिश्रमी कृषकों के प्रभाव में आने से इनमें बदलाव आया है। यह बदलाव इनके रहन-सहन, शिक्षा के प्रति जागरूकता, राजनीतिक वार्तालाप, आवासीय व्यवस्था में परिवर्तन, विवाह पद्धति तथा मृत्यु संस्कार आदि में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। लेकिन बुक्साओं के स्वभाव में परिवर्तन नहीं आया है।

दूसरी ओर धीरे-धीरे इन शरणार्थियों ने बुक्साओं को मादक द्रव्यों (शराब आदि) के सेवन की बुरी आदतें डालकर अपने प्रभाव में लेना शुरू किया है। मादक द्रव्यों की उपलब्धि के बदले में बुक्साओं ने अपनी पैतृक भूमि को बेचना शुरू किया। इस प्रक्रिया के शुरू होते ही बुक्साओं की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। साठ के दशक में सरकार ने बुक्साओं की भूमि के विक्रय पर रोक लगा दी थी। इस भूमि अधिनियम के लागू होने के फलस्वरूप शरणार्थी, बुक्साओं की भूमि को गिरवी (रेहन) रखना प्रारंभ कर दिए थे। वर्तमान समय में भी यह प्रक्रिया जारी है।

इस क्षेत्र में भूमि का मूल्यांकन भूमि की उत्पादकता, शस्य सम्मिश्रण की क्षमता, सिंचित एवं असिंचित आदि के आधार पर दो रूपों में होता है। सिंचित भूमि का औसत मूल्य लगभग 150,000 रु० प्रति एकड़ है। जबकि असिंचित भूमि का औसत मूल्य रु० 100,000 प्रति एकड़ से 120,000 प्रति एकड़ है। यदि सिंचित एवं असिंचित भूमि का औसत मूल्य रु० 100,000 प्रति एकड़ मान लें तो बुक्साओं की ऐसी भूमि जो कर्जदारों के कब्जे में गिरवी (रेहन) के रूप में रखी गई है उसका मूल्य करोड़ों रुपये होता है। वहीं रेहन रखी जमीन का अधिकतम मूल्य 5000 रु० से लेकर न्यूनतम एक शराब की बोतल भी है। कुछ भूमियों पर फर्जी कब्जा लिखाकर हड़प लिया गया है। इतना ही नहीं इस क्षेत्र के समृद्ध लोग अपनी सन्तानों का नामकरण बुक्साओं के नाम से मेल खाते हुए कराते हैं ताकि भूमि हस्तांतरण में कोई कानूनी अड़चन न आये।

भूमि को गिरवी (रेहन) रखने के मुख्य कारण:-

1. बुक्सा लगभग शत-प्रतिशत अशिक्षित हैं। अत: भूमि का सही मूल्य ज्ञात न होने के कारण छोटी-छोटी वस्तुओं के बदले में अपनी खेती दे देते हैं।

2. बुक्साओं की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण, अपनी खेती में अच्छे बीज, रासायनिक उर्वरकों तथा कृषि उपकरणों का प्रयोग न कर सकने के कारण फसलोत्पादन अन्य कृषकों की तुलना में कम होता है। अत: कृषि के प्रति लगाव कम रखते हैं। फसल प्राप्त होने से पूर्व ही खाने-पीने की कमी महसूस होते ही भूमि को रेहन रख देते हैं।

3. बुक्सा अत्यधिक आलसी और अकर्मण्य प्रवृत्ति के होते हैं। पूरी निष्ठा और लगन के साथ कृषि में परिश्रम नहीं करना चाहते हैं। कृषि की अपेक्षा मजदूरी को ही अच्छा मान लेते हैं। प्रत्येक बुक्सा की यह इच्छा होती है कि शाम को पेटभर भोजन और पीने के लिए शराब होना चाहिए। अत: शरणार्थी कृषक बुक्साओं की इच्छाओं की पूर्ति कर भूमि अपने कब्जे में कर लेते हैं।

4. बुक्साओं में असुरक्षा की भावना अधिक रहती है। कब्जेदार से अपनी खेती के सम्बन्ध में कुछ कहने से अधिक घबराते हैं। यहाँ तक कि यदि कोई सरदार किसी

बुक्सा की जमीन जबरन जोतता है तो वे किसी से नहीं कहते हैं। सरकारी कर्मचारियों को देखकर घबराते हैं। सर्वेक्षण के समय अन्य लोगों से ज्ञात हुआ है कि बुक्सा अब काफी अच्छे हो गए हैं। पहले किसी अधिकारी को देखकर भाग जाते थे।

5. बुक्सा राजनीति के क्षेत्र में बिल्कुल अनभिज्ञ है। पूछने पर बुक्सा किसी राजनीतिक पार्टी अथवा व्यक्ति का नाम नहीं बता पाते हैं। चुनाव के समय बुक्साओं को मुर्गा/बकरा तथा शराब की दावतें दी जाती हैं ताकि लोगों के कहने पर राजनीतिक पार्टियों के सम्मेलनों तथा सभाओं में भीड़ बढ़ा सकें। प्रभावशाली कृषकों के कहने से अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं। अधिकांश बुक्साओं ने बताया कि उन्हें मत देने को ही नहीं मिलता हैं जबकि जनसंख्या के हिसाब से बुक्सा ग्राम प्रधान से लेकर ब्लाक प्रमुख, क्षेत्र पंचायत तक की राजनीति में सक्रिय एवं प्रभावी रूप से भाग ले सकते हैं। राजनीतिक प्रभाव शून्य होने के कारण बुक्साओं की भूमि सम्बन्धी समस्याओं को ऊँचे स्तर तक नहीं उठाया जा सकता है।

भू-स्वामित्व को प्राप्त करने तथा आर्थिक विकास हेतु सुझाव

1. बुक्साओं की भूमि में विक्रय सम्बन्धी अधिनियमों को समाप्त कर देना चाहिए। ऐसा करने से बुक्सा अपनी भूमि का सही मूल्य प्राप्त कर सकेंगे। जो भूमि 10,00000 रु० की है वह रु० 10,000 में रेहन पर रखी है। यदि भूमि को बेचने की छूट दे दी जाए तो एक एकड़ भूमि से ही अपने कर्जदार से मुक्त हो सकते हैं और शेष भूमि पुनः प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि वर्तमान समय में बुक्सा अपनी भूमि के प्रति लगाव रखने लगे हैं। खोई हुई भूमि को प्राप्त करने के लिए लालायित दीखते हैं और कब्जेदारों से भूमि को प्राप्त करना चाहते हैं।

2. बुक्साओं को शिक्षा के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में बुक्सा विद्यालय में कुछ बच्चे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। प्रौढ़ बुक्साओं को व्यावहारिक शिक्षा एवं कृषि संबंधी प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है। उन्नतिशील बीज, रासायनिक उर्वरकों एवं उपकरणों के प्रयोग संबंधी अनुभवों की जानकारी प्रदान करना चाहिए।

3. बुक्साओं को कृषि उत्पादन का सही मूल्य दिलाने की व्यवस्था करनी चाहिए।

4. मद्यनिषेध तराई क्षेत्र में पूर्णतया प्रभावी किया जाना चाहिए। ऐसा करने से मद्यपान करने की मात्रा तो कम होगी ही साथ ही साथ आने वाली पीढ़ी इससे अप्रभावित रहेगी।

5. बुक्साओं के प्रति सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों (विशेषकर राजस्व विभाग) का व्यवहार अच्छा नहीं है। अतः संबंधित कर्मचारियों को यह निर्देश दिये जायें कि इनके प्रति अपने व्यवहार में परिवर्तन करें। बुक्साओं से ज्ञात हुआ है कि संबंधित कर्मचारी यह धमकी देते रहते हैं कि कुछ खिलाओ-पिलाओ नहीं तो तुम्हारी खेती दूसरे के कब्जे में कर देंगे।

सरकारी संगठनों, स्वायत्तशासी संस्थाओं को बुक्साओं के भू-स्वामित्व पर गहन अध्ययन करके तथा आर्थिक विकास संबंधी परियोजनाओं को क्रियान्वयन करने हेतु सरकार को अपने सुझाव प्रस्तुत करना चाहिए। तात्कालिक प्रभाव से कब्जे की भूमि को मुक्त करा देना चाहिए, क्योंकि जितने मूल्य पर भूमि रेहन रखी है उससे अधिक कृषि उत्पादन प्रतिवर्ष उस भूमि से प्राप्त होता है।

यदि भूमि को गिरवी रखने तथा कब्जा करने की प्रवृत्ति बनी रही तो निकट भविष्य में बुक्सा जनजाति पूरी तरह से भूमिहीन हो जाएगी और स्थायी आवासों को छोड़कर पहाड़ों में आखेटक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो जाएगी। जहाँ एक ओर इन शरणार्थियों के आने से बुक्साओं का सामाजिक परिवर्तन हुआ है वहीं दूसरी ओर भू-स्वामित्व में तीव्रगति से ह्रास हुआ है। आज बुक्सा नाना प्रकार की कुण्ठाओं से ग्रसित हैं। चेहरे पर मायूसी लिए हुए अपनी भूमि के प्रति चिंतित हैं। ■

संदर्भ :

(1) ***A. Hasan and Balram*** *: Environment Impact Socio Cultural Transformation of Buxas in Nanital District. Himalya : Man and Nature vol.- xiv, No.10 March, 1991, Page No. 06, 'Himalya Seva Sangh' New Delhi.*

(2) ***बलराम एवं शलिगराम रजक*** *: बुक्साओं की बदलती सामाजिक प्रवृत्तियाँ।*
हिमालयः *निवासी और निसर्ग वर्ष 19, अंक 3, जनवरी-मार्च 1998, पेज 01-06, हिमालय सेवा संघ, नई दिल्ली।*

(डॉ. बलराम, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर में भूगोल विषय के प्रवक्ता हैं।)

आदिवासी समाज और शिक्षा का स्वरूप– छत्तीसगढ़ के संदर्भ में

■ मनीषा महापात्र

शिक्षा और समाज में गहरा संबंध है। एक ओर शिक्षा परंपरा और धरोहर को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाती है और इस तरह संस्कृति की निरंतरता बनाये रखने में सहायक होती है। दूसरी ओर पारिस्थितिक परिवर्तन उसे अनुकूलन का साधन बनने की प्रेरणा देते हैं। अपने इस पक्ष में शिक्षा व्यक्ति के विकास का माध्यम बनती है। समाज के विकास के लिए शिक्षा के ये दोनों प्रकार्य महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि, परंपरा की उपेक्षा यदि समाज को धूरीहीन बनाती है तो परिवर्तन की अस्वीकृति या मंदगति सांस्कृतिक पक्षाघात प्रमाणित हो सकती है। वैकल्पिक भविष्य की परिकल्पनाओं को साकार करने के लिये इन दोनों प्रकार्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

छत्तीसगढ़ की जनजातियों में शिक्षा के स्वरूप को मोटे तौर पर 4 भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. शिक्षा की पद्धति।
2. शिक्षा से संबद्ध व्यक्ति।
3. शिक्षा की विषयवस्तु।
4. शिक्षा की प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रेरणा और लक्ष्य।

इन विभाजनों को संक्षेप में निम्नानुसार समझा जा सकता है–

1 शिक्षा की पद्धति

1.1 पारंपरिक पद्धति

जनजातियों के छोटे-छोटे बच्चे अपने माता-पिता एवं अन्य वयस्क नातेदारियों के कामकाज को देखकर, उनकी नकल कर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते रहे हैं। ये बच्चे छोटे-छोटे औजारों के नकली प्रारूपों को खिलौने के रूप में इस्तेमाल करते हैं और उनके इस व्यावहारिक खेल में बड़े भी रुचि लेकर उन्हें प्रशिक्षित करते हैं।

जनजातियों के इस पारंपरिक शिक्षा पद्धति की यह विशेषता रही है कि उसमें बच्चों का प्रशिक्षण, विशेषीकृत सांस्कृतिक प्रक्रिया के बजाए अन्य क्रियाओं का एक गौण उत्पादन माना जाता है। वयस्क व्यवहार प्रणालियों में विकसित होती सहभागिता से उस पर असर पड़ता है। यह शिक्षा पद्धति, स्थानीय परिस्थितिजन्य अर्थव्यवस्था से सीधे जुड़ी होती है। इसलिये जनजातियों में औपचारिक शिक्षा या घर परिवार के दैनिक कार्यों से दूर शिक्षा की प्रणाली नहीं है।

अत: जनजातियों में बच्चों की शिक्षा कृत्रिम औपचारिक स्थितियों की बजाय, वास्तविक जीवन स्थितियों के माध्यम से प्रदान की जाती है। इस अध्ययन पद्धति में खेल और शिक्षा के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं है। उदाहरण के लिये छोटी टँगिया या मछली मारने के छोटे उपकरण, उन्हें कार्य का प्रशिक्षण भी देते हैं और उनके खेल का अंग भी होते हैं। यहाँ बच्चों को जिम्मेदारी के कार्य का प्रशिक्षण, खेल के साथ ही दे दिया जाता है। इस तरह जनजातियों में पारंपरिक शिक्षा पद्धति, खेल-खेल में ही

आदिवासी शिक्षा के प्रारंभिक दिनों में एल्विन ने पाया था कि "ये सवर्ण शिक्षक आदिवासियों को बर्बर और स्वयं को सभ्य एवं उच्च मानते थे।" रामशरण जोशी ने भी बीसवीं सदी के आठवें दशक में यही देखा कि "गैर आदिवासी शिक्षक का मूल निवासियों के प्रति वही तिरस्कार का रवैया है।"

जनजीवन की शिक्षा प्राप्त कर लेने की है।

इस पारंपरिक शिक्षा पद्धति में अपने भौगोलिक परिदृश्य के अनुरूप ज्ञान प्राप्त कर जीने के लिये प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने के गुण थे। अतः इस समाज के बच्चों के लिये पेड़ों पर चढ़ना, नदी-नाले पार करना, मवेशियों को जंगल ले जाकर चराकर लाना, मवेशियों एवं स्वयं की जंगली जानवरों से सुरक्षा करना, पलक झपकते ही पहाड़ों को पार कर दूसरे गाँव से लौट आना, जंगल की आवाज की पहचान एवं बियावान में दिशा ज्ञान नहीं खोना, लकड़ी, पीतल की सुंदर आकृतियाँ बनाना, चित्रकारिता, नृत्य एवं संगीत में दक्षता प्राप्त करना तथा खाद्य वनस्पतियों और औषधियों की खोज, इनकी पारंपरिक शिक्षा पद्धति की विशेषता रही है।

1.2 आधुनिक पद्धति

आधुनिक शिक्षा की पद्धति, बंद क्लासरूम की पद्धति है। इस पद्धति से यहाँ के बच्चे परिचित नहीं होते हैं और अभ्यस्त भी नहीं हो पाते हैं। घर का वातावरण भी ऐसा नहीं होता है कि वे अपने बच्चों को:

(अ) क्लासरूम की शिक्षा के लिए प्रेरित करें,

(ब) घर की दिनचर्या (यह बच्चों के लिए एक तरह से पारंपरिक शिक्षा ही है) से पृथक करें।

जिसका परिणाम यह होता है कि इन बच्चों की उपस्थिति स्कूलों में संतोषजनक नहीं रह पाती है। अंततः ये स्कूली शिक्षा को बीच में ही छोड़ देते हैं। अनुसूचित क्षेत्रों की यह एक अतिमहत्वपूर्ण समस्या है।

2. शिक्षा से संबद्ध व्यक्ति (शिक्षक)

2.1 पारंपरिक शिक्षक

जनजातियों में पारंपरिक शिक्षा देने के लिये पृथक से कोई शिक्षक नहीं होता है। घर-परिवार एवं नातेदारी के बड़े सदस्य, उम्र में बड़े भाई-बहन, और पास-पड़ोस के लोग अनायास ही शिक्षा देने का कार्य करते हैं। जनजातियों में परिवार के प्रत्येक सदस्य को जीवन-यापन की प्रक्रिया में सहयोग देना पड़ता है। वे शिकार सामूहिक करते हैं, खेती में सहयोग करते हैं, मछली मारते हैं, जानवरों का पालन-पोषण करते हैं, मकान बनाने में सहायता करते हैं।

इन सभी कार्यों में लड़के अपने पिता ओर लड़कियाँ अपनी माता की सहायता करती हैं। वे अपने-अपने क्षेत्र में खेल-खेल में ही इन कार्यों की दक्षता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। बच्चों की रुचि ही उन्हें शैक्षणिक प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाती है। इस पद्धति में स्वयं सीखने पर जोर होता है। अतः बच्चों को वयस्क क्रियाओं में भागीदार बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इससे बिना किसी आकस्मिक संक्रांति के वे सहज ही अपने समाज के अंग बन जाते हैं।

आधुनिक शिक्षा की विषयवस्तु का लक्ष्य अधिक से अधिक नौकरी दिलाना होता है। यह लक्ष्य भी बहुधा आदिवासी के लिए 'मृगतृष्णा' साबित हो रही है। क्योंकि, शिक्षा की विषयवस्तु परिस्थितिजन्य वास्तविकताओं से कतई मेल नहीं खाती है। डॉ० श्यामाचरण दुबे ने आदिवासी शिक्षा के संदर्भ में कहा है – "जो सबसे अधिक निर्धन और सबसे अधिक जरूरतमंद है, उन्हें लाभ पहुँचा ही नहीं। उन्होंने जो भी थोड़ी बहुत शिक्षा पायी है वह अधिकतर अप्रकार्यात्मक सिद्ध हुई है। उसने, उन्हें परंपरागत परिवेश से अलग तो कर दिया किन्तु उन्हें देश की उभरती सामाजिक-आर्थिक धारा में शामिल होने के योग्य नहीं बनाया।"

संक्षेप में, पारंपरिक शिक्षा से संबद्ध व्यक्ति परिवार/नातेदारी के ही वयस्क अथवा बड़े सदस्य होते हैं और शिक्षा की व्यावहारिकता तथा इसका सामाजिक मूल्य होने के कारण, बच्चे भी अनायास, इससे संबद्ध हो जाते हैं।

2.2 आधुनिक शिक्षक

आधुनिक शिक्षा के लिये संबंध व्यक्ति, प्रायः भीतरी

क्षेत्र में रहने वाले जनजातियों में घर-परिवार के लोग नहीं हो पाते हैं। वे इस शिक्षा पद्धति से स्वयं अपरिचित होते हैं। अत: जनजातियों के लिये आधुनिक शिक्षा का सूत्रधार ''गुरुजी'' होता है। मेरे मत से इन गुरुओं पर क्षेत्र में शिक्षा के प्रसार के लिए दोहरी जिम्मेदारी होनी चाहिए:

(अ) स्कूल की शिक्षा को रुचिकर/जीवन्त बनायें।

(ब) स्कूल से बाहर भी एक ऐसा वातावरण निर्मित करें, जिससे प्रभावित होकर बच्चे स्व-प्रेरणा से स्कूल आयें।

आदिवासी शिक्षा के प्रारंभिक दिनों में एल्विन ने पाया था कि ''ये सवर्ण शिक्षक आदिवासियों को बर्बर और स्वयं को सभ्य एवं उच्च मानते थे।'' रामशरण जोशी ने भी बीसवीं सदी के आठवें दशक में यही देखा कि ''गैर आदिवासी शिक्षक का मूल निवासियों के प्रति वही तिरस्कार का रवैया है।''

लेकिन आज इन स्थितियों में बदलाव आ चुका है। शिक्षकों की नियुक्तियाँ, स्थानीय स्तर पर जनपद पंचायत के द्वारा की जा रही है। अत: आज, गैर जनजातीय शिक्षकों के व्यवहार में वह तिरस्कार का भाव नहीं रहता है जो एल्विन के समय में था। फिर भी औपचारिक शिक्षा के प्रसार के लिये यह आवश्यक है कि ''शिक्षकों को बच्चों के परिवार के सदस्यों से मिलकर उन्हें भी इस शिक्षा व्यवस्था से जोड़ना होगा।'' अर्थात् शिक्षकों को शिष्य एवं उनके अभिभावकों के बीच इसी तरह की भूमिका निभानी होगी, जिस तरह प्रसूता एवं नवजात शिशु के बीच एक नर्स निभाती है तभी आदिवासी शिक्षा का सार्थक परिणाम हमें मिल सकेगा और ये शिक्षक तभी जाकर पारंपरिक मिथकों का स्थान ले पाएँगे। जैसा कि राज्य के जशपुर, रायगढ़ एवं नारायणपुर आदि क्षेत्रों में हुआ है। जशपुर एवं रायगढ़ जैसे आदिवासी क्षेत्रों में क्रिश्चियन मिशनरी तथा बस्तर के नारायणपुर क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन द्वारा आदिवासियों को समर्पित भाव से साक्षर नहीं शिक्षित किया जा रहा है। अत: मेरी मान्यता है कि पहुँचविहिन क्षेत्रों में आने वाले स्कूलों के प्राइमरी स्तर के शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण आयोजित होना आवश्यक है।

3. शिक्षा की विषयवस्तु

3.1 पारंपरिक विषयवस्तु

जनजातियों में शिक्षा की विषयवस्तु, उनके दैनिक जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं से भिन्न नहीं होती। इनके बच्चे जीवन-यापन की प्रक्रिया में कुशलता और ज्ञानं के साथ ही अपने समाज की परंपरा और मूल्य पद्धति में भी अनायास शिक्षित किये जाते हैं –

(अ) ज्ञान और कुशलता–यह भौगोलिक वातावरण में व्यवस्थित होने और व्यावहारिक जीवन, आर्थिक उद्यम के लिये जरूरी है।

(ब) परंपरा और मूल्य–यह उनके अपने सामाजिक वातावरण में व्यवस्थित होने के लिए आवश्यक है।

इसलिए जनजातियों के बच्चों में जीवन के प्रति एक यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित होता है और उनमें रुग्ण, भय या अस्वस्थ मानसिकता पनपने नहीं पाती। ये बच्चे जीवन की भौतिक वास्तविकताओं से छोटी उम्र में ही परिचित हो जाते हैं। समाज की संरचना में बच्चों की भागीदारी क्रमश: बढ़ती जाती है। अत: बच्चों को इस विषयवस्तु में अपनापन का अनुभव होता है।

3.2 आधुनिक विषयवस्तु

आधुनिक शिक्षा की विषयवस्तु का लक्ष्य अधिक से अधिक नौकरी दिलाना होता है। यह लक्ष्य भी बहुधा आदिवासी के लिए 'मृगतृष्णा' साबित हो रही है। क्योंकि, शिक्षा की विषयवस्तु परिस्थितिजन्य वास्तविकताओं से कतई मेल नहीं खाती है। डॉ० श्यामाचरण दुबे ने आदिवासी शिक्षा के संदर्भ में कहा है –''जो सबसे अधिक निर्धन और सबसे अधिक जरूरतमंद है, उन्हें लाभ पहुँचा ही नहीं। उन्होंने जो भी थोड़ी बहुत शिक्षा पायी है वह अधिकतर अप्रकार्यात्मक सिद्ध हुई है। उसने, उन्हें परंपरागत परिवेश से अलग तो कर दिया किन्तु उन्हें देश की उभरती सामाजिक-आर्थिक धारा में शामिल होने के योग्य नहीं बनाया।''

डॉ० ब्रह्मदेव शर्मा का भी यही मानना है– ''आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा का स्तर इतना कमजोर है कि शिक्षित

बालकों के लिए भी बाहरी दुनिया में प्रतिस्पर्धा में खड़े हो सकने की कोई संभावना ही नहीं है। शिक्षा प्राप्त कर यदि आदिवासी बालक भाषायी अवरोध तोड़ता है, तब भी सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अवरोध सामने खड़ा पाता है। औपचारिक शिक्षा साक्षर कर रही है, पर नया मूल्य संदर्भ देने में असफल रही है।''

यद्यपि ये बातें एक सीमा तक सही है पर आज का सच यह भी है कि साक्षरता में प्रसार हो रहा है। जैसे वर्ष 1961 में यदि अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता का प्रतिशत राज्य के इन क्षेत्रों में 11.20 प्रतिशत था तो वर्ष 1971, 1981 एवं 1991 में यह बढ़कर क्रमशः 12.02, 17.18 तथा 25.39 हो गया। साक्षरता की दर में दर्ज की गई यह वृद्धि जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी क्षेत्रों में परिलक्षित हो रही है इसके बावजूद समाज का अँतिम व्यक्ति, जो भौगोलिक कोने में दुबका पड़ा है, की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यकता जान पड़ रही है कि शिक्षा की विषयवस्तु में कुछ नई बातें जोड़ी जायें। विशेष कर माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन कर उसे जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं के अनुरूप बनाया जाना चाहिए।

आज सूचना एवं प्रौद्योगिकी के युग में नई टेक्नोलॉजी की शिक्षा एवं नये पाठ्यक्रमों की शुरुआत एक महती आवश्यकता है। पर यह भी ध्यान देना होगा कि निकट भविष्य में हमारी अर्थव्यवस्था क्या रहेगी? टेक्नोलॉजी एवं नये पाठ्यक्रमों के साथ आगे बढ़कर आदिवासी ही नहीं देश की कितनी आबादी अपनी आजीविका चला पाएगी? आज नये राज्य में शिक्षा की नई नीति के निर्धारण के समय हमें शिक्षा की नई उड़ान के साथ-साथ जमीनी वास्तविकता से तालमेल बैठाना होगा।

यह हम जानते हैं कि निकट भविष्य में हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि बनी रहेगी। अधिकांश व्यक्ति खेती, मजदूरी और छोटे-छोटे काम धंधे करके अपना निर्वाह करते रहेंगे। अतः प्रारंभिक शिक्षा की नींव ऐसी होनी चाहिए ताकि साधारण श्रमिक समानता पर आधारित लोकतांत्रिक समाज के जिम्मेदार सदस्य की हैसियत से सम्मानपूर्वक रह सके।

इस संदर्भ में आवश्यकता है कि शिक्षा को पर्यावरण पर आधारित बनाते हुए शिल्पोन्मुखी भी बनाना होगा। पाठ्यक्रम में जो कुछ पढ़ाया जाता है उसमें कृषि, वनविद्या, बागवानी, ग्रामोद्योग और उनके प्रबंधन जैसे विषयों को जोड़ना होगा, ताकि, रोजगार और स्व-नियोजन के अवसर आदिवासी युवाओं को अधिक सुगमता से सुलभ हो सकें। फिर शिक्षा की यह विषयवस्तु आदिवासी जीवन के समग्र से जुड़ेगी। इससे शिक्षा का यह नया स्वरूप उन्हें पूर्णतया स्वीकार भी होगा और 'ड्रापआउट' की समस्या पर नियंत्रण हो सकेगा।

4. शिक्षा की अन्तर्निहित प्रेरणा

4.1 पारंपरिक स्रोत

जनजातियों की पारंपरिक शिक्षा, सीधे-सीधे उनके जीवनमूल्यों से जुड़े होने के कारण उसकी अंतर्निहित प्रेरणा, जीवन संस्कारों में ही घुली-मिली होती है। अभिभावकों अथवा बच्चों को इसके लिए किसी पृथक प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है।

4.2 आधुनिक स्रोत

इनमें आधुनक शिक्षा की अंतर्निहित प्रेरणा बाहरी संपर्क, शासकीय एवं अशासकीय प्रयासों तथा बाजारों में निरंतर शोषण के प्रतिकार के रूप में विकसित हो रही है। इस तरह आधुनिक शिक्षा के प्रति अंदरूनी क्षेत्र के जनजातियों में प्रेरणा कोई स्वतःस्फूर्ति नहीं है। शासकीय प्रयासों के तहत बच्चों के नाम स्कूल में दर्ज हो जाते हैं। बच्चे स्कूल जाने लगते हैं और फिर ये स्कूल जाना भी बंद कर देते हैं। पढ़े-लिखे अभिभावक अपने बच्चों का नाम स्कूल में लिखवा तो आते हैं पर प्रायः ये भी बच्चों की पढ़ाई पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि आदिवासी समाज में शिक्षा का पारंपरिक स्वरूप अत्यंत सहज एवं सरल था। यह उनके वातावरण, परिवेश के अनुकूल था। इससे उनके

समाज व्यवस्था को गति मिली हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप यह समाज व्यवस्था आज तक जीवंत बनी रह सकी। परंतु जीवन की जटिलता (अर्थात् विकास) के साथ शिक्षा का स्वरूप भी विशिष्टता की ओर बढ़ता चला गया। आज शिक्षा का मानवीय जीवन में केन्द्रीय स्थान हो गया है। मानव की नियति, आदिवासियों के लिए नयी व्यवस्था में मानवोचित स्थान, सभी कुछ तो शिक्षा पर ही निर्भर है, अधिकाधिक निर्भर होता जा रहा है।

संक्षेप में आज शिक्षा ही पर्याप्त नहीं है, वरन् विशिष्टता अत्यावश्यक है। मेरा यह मत है कि जनजातियों में यह विशिष्टता उनके पर्यावरण से संबंधित कौशल में ही दी जा सकती है। यह क्षेत्र होगा कृषि, वन (पर्यावरण) एवं शिल्पोद्योग (हस्तकला)। ये तीनों ही क्षेत्र उनकी परंपरा से जुड़े हुए हैं तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान भी रखते हैं। अत: मेरा यह मानना है कि कृषि के साथ-साथ करोड़ों रुपयों का उत्पादन देने वाले जंगल के बारे में जब ये लोग आधुनिक रूप से जानेंगे तब शिक्षा के साथ-साथ अपने परिवेश में ही रहकर आधुनिक अर्थव्यवस्था में जुड़ने एवं क्रमश: अपने जीवन मूल्यों के साथ देश की मुख्यधारा में आने का अवसर हमारे आदिवासियों को मिल सकेगा। हमारी शिक्षा नीति का लक्ष्य भी यही है। ■

संदर्भ ग्रंथ:

1. *बेहार, शरतचंद : शिक्षा समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2000*
2. *दुबे, एस. सी. : परंपरा इतिहासबोध और संस्कृति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली*
3. *शर्मा, ब्रह्मदेव : आदिवासी विकास एक सैद्धान्तिक विवेचन, हिंदी ग्रंथ अकादमी: भोपाल: 1980*
4. *शर्मा, ब्रह्मदेव : गरीबी का मकड़जाल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2000*
5. *शुक्ल, हीरालाल : आदिवासी अस्मिता और विकास, म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल-1997*
6. *रिपोर्ट : जनजातीय क्षेत्रों में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण पर कार्यशाला, जगदलपुर एन.सी.ई.आर.टी., राष्ट्रीय शैक्षणिक और प्रशासन संस्थान नई दिल्ली आयोजन-1986*
7. *रिपोर्ट : चैलेन्ज ऑफ एजुकेशन्स, पालिसी प्रासपेक्टिव, भारत शासन नई दिल्ली-1985*

(डॉ० मनीषा महापात्र, समाजशास्त्र की सहायक प्राध्यापिका हैं। पता-आदिवासी बालक छात्रावास परिसर, जरहाभाटा, बिलासपुर, 495001)

कर्नाटक जिला....

(पेज 62 का शेष)

विकास।

(9) **विकास कार्य :** कर्नाटक के राजगोंड आर्थिक रूप से गरीब होने के बावजूद सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से धनी हैं। उनके विकास के लिए श्री बी. नारायण राव, एक सामाजिक कार्यकर्ता और श्री डी. देवराज अर्स, शिक्षा न्यास, बीदर के अध्यक्ष, ने केंद्र एवं राज्य सरकारों की मदद से गहन एवं समग्र योजनाओं को कार्यान्वित किया है। हाल ही में राजगोंड लोगों के लिए बीदर में इस न्याय ने एक रिहायशी विद्यालय तथा एक वृद्ध निवास की स्थापना की है। श्री बी. नारायण राव के प्रयासों के फलस्वरूप ही बीदर में एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय, एक आँगनबाड़ी विद्यालय, एक समुदाय भवन, एक छोटा जलापूर्ति केंद्र, भीतरी सड़कों का निर्माण एवं आयुर्वेदिक वृक्ष लगाना, सड़क और भाग्यज्योति, 115 आश्रय, आवास गृह, व्यापार के लिए व्यक्तिगत ऋण, राशनकार्ड, विधवाओं, विकलांगों तथा वृद्धों के लिए पेंशन इत्यादि अनेक विकास कार्य सम्पन्न हुए हैं। इसी तरह हरिहर तालुका के बेल्लुडी गाँव के राजगोंड कालोनी में भी ऐसे ही विकास कार्य किए जा रहे हैं। परन्तु बंगलोर के राजगोंड के लोगों तक कोई भी सरकारी सुविधा नहीं पहुँची है।

(10) **उपसंहार :** हम सभी नयी सहस्राब्दी में मलेरिया, टी.बी. इत्यादि जैसे रोगों के साथ प्रवेश किए हैं, जिनके बारे में कभी कहा गया था कि इनकी रोकथाम हो चुकी है। कैंसर, कोढ़, हिपाटिटिस, हृदय रोग, मानसिक तनाव, एड्स इत्यादि की चुनौतियाँ बनी हुई हैं। स्पष्टत: जड़ी-बूटियों पर आधारित औषधियाँ गाँव के लोगों की स्वास्थ्य सुरक्षा की प्रथम स्तरीय दवाइयाँ हैं। अत: आवश्यकता इस बात की है कि इन संभावना भरी जनजातीय दवाइयों के प्रचार-प्रसार हेतु आर्थिक तथा नैतिक सहायता प्रदान की जाए। ■

(अनिल कुमार पाण्डेय द्वारा अनूदित)

अरावली में घुमन्तू कबीलों की स्थिति

■ हेमलता मृत्युंज्य

आर्यवृत्त की धरती पर (वर्तमान में भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान के क्षेत्राधिकार की सीमाएं) प्राचीनकाल में जब सामाजिक ढांचा जन्म के आधार पर जातिगत व्यवस्था में विकेन्द्रित नहीं था तब समाज कर्म व्यवस्था के आधार पर पहचाना जाता था। इस काल में अनेक वर्ग शिकार, सुरक्षा, सेवा, कौशल आदि वर्गों के धनी थे जहाँ भगवान कृष्ण, गौतमबुद्ध, महावीर स्वामी, यीशु जैसे युगावतार महापुरुषों की शिक्षा के आधार पर प्रेम, विश्वास, अपरिग्रह और अहिंसा जैसे मानवीय मूल्य संसाधनों के सहारे सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ बनी हुई थी। परस्पर हर व्यक्ति का सम्मान और स्वाभिमान सुरक्षित बनाए रखते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की युक्ति को चरितार्थ करते हुए सभी सहयोगपूर्ण जीवन जी रहे थे।

आज विश्व की प्राचीनतम पर्वतमाला अरावली देश के खानाबदोश कबीलों की शरणस्थली है जिसने इन कबीलों को जीवन की सुरक्षा दी है। भरतपुर जिला इस मानवाधिकार हनन के प्रश्न पर न केवल राज्य और देश में चर्चित हुआ है बल्कि पूरी दुनिया की आँखें इस पर टिकी है जहाँ अनेक जातियों के कई हजार वंचित लोग सुरक्षा, पीने का पानी, आवास स्थल जैसी संविधान प्रदत मूलभूत सुविधाओं के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

घर का ठिकाना यहाँ पर पहचान का आधार नहीं था। अधिकांश लोग इन परिस्थितियों में समुदाय की आवासीय व्यवस्था पर ही निर्भर थे और जिनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति भी समाज व्यवस्था पर ही आधारित थी। घुमन्तू जीवनयापन करने वाले विचार को इन सामाजिक परिस्थितियों ने न केवल सहयोग दिया बल्कि घुमन्तू जीवन-बसर करने के हालात को प्रादुर्भूत किया क्योंकि पहचान का आधार व्यवस्था और संसाधन नहीं थे बल्कि पहचान का स्रोत समाज के प्रति उनकी निष्ठा, भावनाएँ और समर्पण थी जहाँ गाँव-गाँव में सत्य, धर्म, परोपकार जैसे गुणों के धनी चर्चा में आए।

प्राचीन भारत में स्वयं का कुछ नहीं होता था। लेकिन समाज, ग्राम और समुदाय की व्यवस्थाओं का आधार सामूहिक वृत्त था। लेकिन हमारी इस सामूहिक व्यवस्था का पतन उस क्षण से शुरू हुआ जब आर्यवृत्त में अनार्यों का आगमन शुरू हुआ अर्थात् विदेशी ताकतों का प्रवेश। ये अपने साथ विदेशी सोच, विदेशी मान्यताएँ, संस्कृति के विदेशी मूल्य, यांत्रिक तकनीकें साथ लेकर आये जिसके फलस्वरूप सामंजस्य की कड़ी ढीली होने लगी। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में इन ताकतों ने अपनी कूटनीति से आर्यवृत्त पर शासन कर अपनी सत्ता जमायी जिसने इन घुमन्तू लोगों को आधारविहीन व एकाकी बनाने में कारगर भूमिका अदा की जोकि समाज से कट कर घुमन्तुओं के रूप में पहचाने जाने लगें। उनके सामने, इन परिस्थितियों में, सम्मान का संकट बन गया, क्योंकि सामाजिक धारा से इन्हें बिछुड़ने को मजबूर कर दिया जहाँ कदम-कदम पर इन्हें अपमान, उत्पीड़न और शोषण का शिकार होना नियति के सत्य के रूप में स्वीकार करना पड़ा।

10वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी के बीच भारत में इन परिस्थितियों का शिकार होकर अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए अनगिनत समुदाय खानाबदोश

जीवन जीने को मजबूर हो गए और घुमन्तू जीवन व्यतीत करने लगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने से लेकर भारत की आजादी तक का समय खानाबदोश जीवन बसर करने वाले समुदाय के लिए सबसे अधिक त्रासदी का समय रहा है क्योंकि खानाबदोश आर्यवृत्त के मूल निवासी थे और सत्ता के स्वामी शत-प्रतिशत यूरोपियन थे, जिनके बीच जमीन-आसमान का अन्तर रहा है। सन् 1850 के सबसे प्रथम आजादी आन्दोलन में महत्वपूर्ण शुरुआती आवाज भारत के खानाबदोश/अघोषित समुदायों ने ही खड़ी की जिन्हें नियंत्रित करने के लिए अंग्रेजी सल्तनत ने 1871 में इन स्वाभिमानी लोगों को जन्मजात अपराधिक जातियाँ घोषित करने का अधिनियम पारित किया, जिसमें अनेक जातियों को जन्मजात अपराधी घोषित किया गया। जबकि जन्म से न कोई व्यक्ति अपराधी होता है और न ही गैर अपराधी। तरह-तरह के अत्याचारों का शिकार होने के बाद भी लोग आजादी आंदोलन में डटे रहे। किन्तु आजादी मिलने के बाद भारत के संविधान निर्माताओं ने खानाबदोश कबीलों के लिए कोई प्रावधान और उपबंध नहीं बनाए। यहाँ तक कि उनकी इस समस्या की ओर ध्यान ही नहीं दिया। देश में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों से भी बदतर इन खानाबदोश कबीलों को वह लाभ भी नहीं मिल पाया है जो अन्य पिछड़े वर्गों को मिला है। 31 अगस्त, 1952 में इस विवादास्पद एक्ट को समाप्त करने का प्रयास किया गया जो आजादी के पाँच वर्ष बाद और संविधान बन जाने के बाद इस दिशा में पहला प्रयास था। आज देश में लगभग 200 प्रजातियाँ खानाबदोश जिन्दगी जी रहीं हैं, जिनकी संख्या देश में लगभग 10 करोड़ है। देश की आजादी के 56 वर्ष गुजर जाने के बाद आज भी इन घुमन्तू प्रजातियों के कबीले पूरी सच्चाई के साथ जनगणना प्रक्रिया तक में नहीं है, जो भारतीय जनगणना का भ्रमित विषय है। यहाँ इन समुदायों के लिए भारत की आजादी, विकास प्रक्रिया और निष्ठावान संविधान झूठा हो गया है। आज एक ओर देश के राजनैतिक गलियारे में इनके लिए कोई इच्छाशक्ति नहीं है, न समाज द्रष्टाओं के पास यह विचारणीय विषय है। दूसरी ओर कार्यपालिका व विधायिका के मंच इन मानवाधिकारों एवं संवैधानिक अधिकारों के प्रश्न पर उदासीन हैं। आज विश्व की प्राचीनतम पर्वतमाला अरावली देश के खानाबदोश कबीलों की शरणस्थली है जिसने इन कबीलों को जीवन की सुरक्षा दी है। भरतपुर जिला इस मानवाधिकार हनन के प्रश्न पर न केवल राज्य और देश में चर्चित हुआ है बल्कि पूरी दुनिया की आँखें इस पर टिकी है जहाँ अनेक जातियों के

सन् 1850 के सबसे प्रथम आजादी आन्दोलन में महत्वपूर्ण शुरुआती आवाज भारत के खानाबदोश/अघोषित समुदायों ने ही खड़ी की जिन्हें नियंत्रित करने के लिए अंग्रेजी सल्तनत ने 1871 में इन स्वाभिमानी लोगों को जन्मजात अपराधिक जातियाँ घोषित करने का अधिनियम पारित किया, जिसमें अनेक जातियों को जन्मजात अपराधी घोषित किया गया। जबकि जन्म से न कोई व्यक्ति अपराधी होता है और न ही गैर अपराधी। तरह-तरह के अत्याचारों का शिकार होने के बाद भी लोग आजादी आंदोलन में डटे रहे। किन्तु आजादी मिलने के बाद भारत के संविधान निर्माताओं ने खानाबदोश कबीलों के लिए कोई प्रावधान और उपबंध नहीं बनाए।

कई हजार वंचित लोग सुरक्षा, पीने का पानी, आवास स्थल जैसी संविधान प्रदत मूलभूत सुविधाओं के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

आइए, आप, हम सब साथ-साथ चलें और अरावली की क्षेत्राधिकार सीमा में भाग्यहीन, अघोषित, गैर विज्ञापित खानाबदोश वंचित जनजातियों को प्यार करें, इनकी भाषा को समझें और सकारात्मक विश्वास दें ताकि शताब्दियों से वंचित समुदाय राष्ट्रीय मुख्य धारा में सम्मिलित हो सकें और अपनी शक्ति राष्ट्र के विकास में लगाने का साहस कर सके। ■

(हेमलता मृत्युंज्य, 'मुक्तिधारा' विराटनगर, जयपुर में कार्यालय संयोजक हैं)

श्री लक्ष्मण गायकवाड़ मराठी के प्रसिद्ध लेखक व सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं तथा साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हैं। आपकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। विमुक्त जनजाति में जन्में श्री गायकवाड़ ने अपनी आत्मकथा 'उचल्या', जो कि हिन्दी में 'उठाईगीर' नाम से प्रकाशित हुई है, में मूलभूत सुविधाओं से वंचित इन समाजों का जीवंत वर्णन किया है। श्री गायकवाड़ जनजातियों के उत्थान के लिए सतत संघर्षरत हैं। इसी संघर्ष से जुड़ी हुई एक घटना इस लेख में वर्णित है।

महाराष्ट्र में तीन सौ पारधी आदिवासियों के मकान जला डाले

■ लक्ष्मण गायकवाड़

महाराष्ट्र के उस्मानाबाद जिले के कलम नामक कस्बे में 8 अगस्त, 2001 के दिन सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे तक आदिवासी पारधी की बस्ती के 11 ठिकानों को आग लगाकर उनके तकरीबन 200 मकान जलाकर राख कर डाले गए। इस जगह रहनेवाले आदिवासी पारधी आजादी से पहले से बसे हुए थे। आज इन पारधी आदिवासियों के पास अच्छे मकान हैं, खेती है, औरों के जैसा यह जी लेते हैं। इनके बच्चे स्कूल में जाते हैं, कोई कॉलेज में पढ़ते हैं। महाराष्ट्र में इतने बड़े पैमाने पर मकान जलाने की शायद यह पहली ही घटना होगी। मकान जलाने की खबर मिलते ही मेरे संगठन के कार्यकर्त्ता हरिभाऊ गायकवाड़ लातूर से 40 किलोमीटर के फासले पर बसे कलम कस्बे में तुरन्त जा पहुँचे और वहाँ के हालात देखकर उन्होंने मुझे तुरन्त खबर दी।

दूसरे दिन महाराष्ट्र के सभी अखबारों में खबर आई कि गाँव के लोगों ने मिलकर पारधियों की 11 बस्तियाँ जला डालीं। इसके पीछे वजह यह बताई गई कि पारधी के कुछ लोग चोर-उचक्के थे। गाँव के लोगों को बहुत परेशान करते थे और इन चोरी करनेवाले 8-9 लोगों को पुलिस ने हिरासत में लेकर चोरी के इल्जाम में कोर्ट में पेश किया। उसी समय कुछ पारधी महिलाओं ने कोर्ट में जाकर दंगा-फसाद किया, जबकि पुलिस वहीं मौजूद थी। जब पुलिस उनको रोकने की कोशिश कर रही थी, तब कुछ औरतों ने अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़क कर खुद को जलाने की कोशिश की। इसमें बन्साबाई पवार 60-70 प्रतिशत जल गई। यह सुनकर कुछ पारधी लोगों ने गाँव के बीच में स्थित पानी की टंकी में जहर मिलाने की कोशिश की। यह अफवाह पूरे कलम गाँव में फैल गई। तब गाँव के लोगों ने मिलकर पारधियों के 11 बस्तियों के 140 मकान जला दिए। ऐसी खबर अखबार में पढ़कर मैं हैरान हो गया। मैंने तुरन्त उस गाँव में जाने की तैयारी की और अपने दोस्त अरुण कांबले और कुछ पत्रकार दोस्तों के साथ

1976 की ढोकी हत्याकांड मेरे आँखों के सामने नाच रही थी और मुझे लग रहा था कि यह धारणा मराठवाड़ा के जमींदारों के दिलों में बसी है कि ढोकी कांड में पारधियों की हत्या करनेवालों को निर्दोष छोड़ने के बाद आदिवासी पारधी को गुनाहगार करार देकर अगर उनके मकान जलाए, उनके साथ मारपीट की, फिर भी सरकार के लोग अपने ही पक्ष में फैसला देते हैं। इसलिए ही ढोकी के पास 10-12 किलोमीटर पर बसे हुए कलम गाँव में 200 पारधियों की बस्ती जलाने की जमींदारों की हिम्मत बढ़ गई होगी।

मुम्बई से निकलकर सीधा शोलापुर के नजदीक कुरडुवाड़ी जा पहुँचा। वहाँ मेरे मराठवाड़ा के विमुक्त और घुमन्तू जनजाति के कार्यकर्ता शोलार और गायकवाड़ कमे 'कलम' जाने के लिए कार लेकर खड़े थे। कलम गाँव जाने से पहले हमने ढोकी स्थित पारधी बस्ती में जाकर कलम की कुछ जानकारी लेने की कोशिश की। पहले 1976 में इसी ढोकी गाँव में पारधियों की हत्या हुई थी। उस समय भी

हमारे गाँव के ऊपर के लोग तथा कुछ जमींदार, व्यापारी और राजनेता हमारी बस्ती की जमीन की बढ़ी हुई कीमत के कारण हमारे बस्ती की जगह के ऊपर बुरी नजर रखते हैं। वे पुलिस और सरकार को हाथ में लेकर, हमारी बस्ती जलाकर, पुनर्वसन के नाम पर हमें यहाँ से गाँव के बाहर खदेड़कर हमारी कीमती जगह हड़पना चाहते हैं।

गाँव के जमींदार और राजनेताओं ने मिलकर ऐसे ही मकान जलाकर तथा सात लोगों को काटकर हत्या कर दी थी।

हत्या की वजह यह थी कि इस पारधी बस्ती में कल्लाप्पा नाम के पारधी मुखिया ने अपने बिरादरी के सभी लोगों को प्रगति कर 100-150 एकड़ में अनाज उगाकर आम लोगों के जैसे जीने की कोशिश की थी। लेकिन अच्छा किसान और गाँव का नागरिक बनने के नाते कल्लाप्पा ऊँचे लोगों के विरोध में जब चुनाव में खड़ा हो गया तो गाँव के जमींदार लोगों को लगा कि वह उनकी बराबरी कर रहा है। यही कारण था कि उसके सात लोगों को मार डाला और सभी मकान जलाकर राख कर दिया था। उस समय मैं नया-नया कार्यकर्त्ता था। तब भी मैंने इन आदिवासी पारधियों को साथ लेकर संघर्ष किया था। लेकिन जमींदार और राजनेता के आगे हमारी कुछ न चली। यह केस लम्बे अर्से तक कोर्ट में चला पर पारधियों को मारनेवाले सभी आरोपी निर्दोष छूट गए। जो लोग मारे गए थे उनके भाई और बेटों को पुलिस के हत्या की साजिश रचने के आरोप में दसी कोर्ट में बिना वजह आजीवन कारावास की सजा हुई।

1976 की ढोकी हत्याकांड मेरे आँखों के सामने नाच रही थी। मुझे लग रहा था कि यह धारणा मराठवाड़ा के जमींदारों के दिलों में बसी है, कि ढोकी कांड में पारधियों की हत्या करनेवालों को निर्दोष छोड़ने के बाद आदिवासी पारधी को गुनाहगार करार देकर अगर उनके मकान जलाए, उनके साथ मारपीट की, फिर भी सरकार के लोग अपने ही पक्ष में फैसला देते हैं। इसलिए ही ढोकी के पास 10-12 किलोमीटर पर बसे हुए कलम गाँव में 200 पारधियों की बस्ती के जलाने की जमींदारों की हिम्मत बढ़ गई होगी। हम कार्यकर्ताओं के साथ ऐसी बातें करते जा रहे थे।

कलम उस्मानाबाद जिले में एक तालुका है। इस गाँव की आबादी तकरीबन 30-40 हजार होगी। जब हम लोग जाने की कोशिश कर रहे थे तब हमें गाँव के कुछ लोग आदिवासी पारधियों के मकान में जाने नहीं दे रहे थे। जब बाहर का कोई अजनबी या गाड़ी दिखाई देती तो पारधी के बस्ती में जाने से मना करते थे। अत: हमें पुलिस के साथ कलम गाँव में प्रवेश करना पड़ा। हमने आदिवासी पारधियों के जले हुए मकान देखे। हमने पहले पारधी बस्ती की आबादी वाले इलाके जैसे कल्पनानगर, इंदिरानगर, बाजार समिति, दत्तनगर और गायशन जो कि सरकारी जमीन पर आजादी के पहले से बसे हुए थे, को एक-एक करके देखा। कुछ किसान पारधियों के ट्रक, ट्रैक्टर खुद के थे, वह भी जला डाले गए थे और उनके अवशेष बस्ती में दिखाई दे रहे थे। इतना ही नहीं बल्कि इन किसान पारधियों के पक्के मकानों को तोड़कर, सोना, चाँदी और अन्य कीमती चीजों को गाँववालों ने चुराकर, सभी मकानों को जलाकर, दो से तीन हजार पारधी स्त्री-पुरुषों को रास्ते में लाकर खड़ा कर दिया था। हमें देखकर औरतें, बच्चे, बूढ़े चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे और बोल रहे थे कि कार्यकर्ता साहब हमने क्या गुनाह किया था? हमारे सोने जैसे संसार को लूटकर, जलाकर हमें भूखे-नंगे बाल-बच्चों के साथ छोड़ दिया है। हमारी ओर न सरकार है, न पुलिस और न ही गाँव के लोग। हम अच्छी खेतीबाड़ी करके बाल-बच्चों को पढ़ाते थे। अच्छा से जी रहे थे। यह गाँव के लोग खेतीबाड़ी करनेवाले पारधियों से जलते थे। पुलिस भी हमसे बिना वजह पैसा माँगकर हमें तकलीफ देती थी। लेकिन हम लोग कोई चोरी-चकारी नहीं करते। हमारे कुछ पारधियों के एक-एक घर में 50-50 एकड़ खेतीहर जमीन है। फिर हम बुरे धंधे क्यों करेंगे। यह बात सालाबाई राजा काले नाम की औरत चिल्ला-चिल्लाकर बोल रही थी। उसकी पाँच भैंसे, कुछ बकरियाँ गाँव के लोग चुराकर ले

गए। हमारे गाँव के ऊपर के लोग तथा कुछ जमींदार, व्यापारी और राजनेता हमारी बस्ती की जमीन की बढ़ी हुई कीमत के कारण हमारे बस्ती की जगह के ऊपर बुरी नजर रखते हैं। वे पुलिस और सरकार को हाथ में लेकर, हमारी बस्ती जलाकर, पुनर्वसन के नाम पर हमें यहाँ से गाँव के बाहर खदेड़कर हमारी कीमती जगह हड़पना चाहते हैं। राजा

कलम की इस घटना के पीछे क्या राज है, इसे ढूँढ़ने तथा पुलिस सुपरिटेडेंट से मिलने के बाद मुझे यकीन हो गया कि पारधियों के मकान जलाने की योजना पिछले एक महीना से चली आ रही थी, जिसमें पुलिस भी शामिल थी। पुलिस ने हमारे समाज के आम लोगों में 'क्रिमिनल ट्राइब' के बारे में बहुत ही गलत संदेश पहुँचाया हुआ है। सभी को यह लगता है कि देश में जितनी भी चोरियाँ होती हैं वे सभी पारधी, छारा, कंजर, भामटा, कबूतरा, संथाल आदि लोग ही करते हैं। अंग्रेजों के जमाने से लेकर आजादी के 50 साल बाद भी लोगों के दिमाग में ऐसी ही बातें हैं। अगर पुलिस या आम लोग, इन डी.एन.टी. के लोगों का कत्ल करते हैं या उनके मकान ज़लाते हैं तो हमारे देश में किसी को भी बुरा नहीं लगता।

काले नाम का 12वीं कक्षा का एक लड़का कहने लगा, ''गाँव के सभी व्यापारी, राजनेता और मिले हुए पुलिस अधिकारियों ने एक-दो मीटिंग कर उन्हें 23 अगस्त को ही हमारी पारधी बस्ती के खिलाफ एक साजिश रची कि आज पारधी की सभी बस्तियाँ, कृषि उपज बाजार समिति, बस स्टैंड और गाँव के बीच में बसा हुआ कल्पनानगर पहले की सरकारी चरागाह की जमीन पर है। यह जमीन सोने के भाव से अगल-बगल में बिकने लगी है, जिसकी कीमत कलम मार्केट में 4 से 5 लाख रुपबा गुंठा लगी है। पारधी बस्ती की 11-12 एकड़ यानी हजारों गुंठा जमीन गाँव के व्यापारियों, जमींदारों द्वारा हड़पने के लिए पारधी के जितने अच्छे मुखिया, किसान हैं, जिनमें राजेन्द्र लगमन पवार जो माजी नगर सेवक है, इन्हीं के साथ 8-10 लोगों को, पुलिस को हाथ में लेकर, इन सभी को चोरी और डाका के इल्जाम में अन्दर करवाके और बाकी सभी पारधियों के मकान जलाकर पुनर्वसन के नाम पर गाँव के बाहर खदेड़ देने की साजिश रची गई थी।'' उसी तरह 27 तारीख को बिट्ठल बाबू पवार, जो किसान हैं और ट्रक मालिक भी हैं, बबन बंसी पवार, कल्याण पवार आदि 9-10 लोगों को डाका डालने की तैयारी में यह लोग थे, कहकर पुलिस के लोग माजी नगर सेवक के साथ बस्ती में से सोते से उठाकर ले गई और कलम गाँव में कुछ जमींदार लोगों के घर में डाका डालने वाले थे, ऐसी अफवाहें अखबार में देकर गाँव के लोगों में पुलिस के माध्यम से नफरत पैदा करने की कोशिश की गई।

कलम की इस घटना के पीछे क्या राज है, इसे ढूँढ़ने तथा पुलिस सुपरिटेडेंट से मिलने के बाद मुझे यकीन हो गया कि पारधियों के मकान जलाने की योजना पिछले एक महीना से चली आ रही थी, जिसमें पुलिस भी शामिल थी। पुलिस ने हमारे समाज के आम लोगों में 'क्रिमिनल ट्राइब' के बारे में बहुत ही गलत संदेश पहुँचाया हुआ है। सभी को यह लगता है कि देश में जितनी भी चोरियाँ होती हैं वे सभी पारधी, छारा, कंजर, भामटा, कबूतरा, संथाल आदि लोग ही करते हैं। अंग्रेजों के जमाने से लेकर आजादी के 50 साल बाद भी लोगों के दिमाग में ऐसी ही बातें हैं। अगर पुलिस या आम लोग, इन डी.एन.टी. के लोगों का कत्ल करते हैं या उनके मकान जलाते हैं तो हमारे देश में किसी को भी बुरा नहीं लगता।

हमारे देश में महाराष्ट्र को सामाजिक परिवर्तन का सबसे बड़ा प्रांत माना जाता है क्योंकि यहाँ पर छत्रपति शाहूजी महाराज, महात्मा फुले और डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, न्यायमूर्ति रानाडे जैसे लोग पैदा हुए थे। फिर भी इस प्रांत में आजादी के इतने साल बाद भी पुराने रीति-रिवाज, वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था में बहुत बदलाव आया है, ऐसा तो मुझे लगता नहीं। महाराष्ट्र के जिस इलाके को संत भूमि माना जाता है, उस मराठवाड़े में जाति के आधार पर अछूत और डी.एन.टी के लोगों को दिन दहाड़े मारा जाता है और उनके मकान जलाए जाते हैं। कलम में आदिवासी पारधियों के मकान जलाने के एक महीना पहले औरंगाबाद के नजदीक संत एकनाथ महाराज

के पैठण गाँव में, सूअर खाकर कुएँ के पानी को छूकर जाति-धर्म का रिवाज तोड़ने के आरोप में सरपंच, पुलिस, पाटील और गाँव के लोगों ने मिलकर वडार आदिवासी लोगों के 20 मकान जलाकर उन्हें बेघर कर दिया था। इसी बात को लेकर जुलाई महीने में हजारों लोगों को लेकर औरंगाबाद में मैंने मोर्चा निकाला था। इस घटना की भाँति ही कलम के 200 पारधी के मकान इसलिए जलाए

बड़ी मछलियाँ सब कुछ निगल जाती हैं और छोटी मछलियाँ जाल में फँस जाती हैं। यही हमारे देश में आजादी के बाद से होता आया है। क्या कलम गाँव में भी यही होनेवाला है, यह सब देखना बाकी है। लेकिन गरीब तबके में घुमन्तू, खानाबदोश, विमुक्त जनजाति, आदिवासी, पिछड़ा दलित वर्ग इस देश में आजादी के लिए तरस रहा है। जबतक उन लोगों पर खुलेआम अत्याचार और उनके घर जलाने का सिलसिला जारी रहेगा तब तक इस देश में आजादी मिली है, यह कहना ही गलत होगा।

क्योंकि पारधी लोगों की बस्ती गाँव के बीचोबीच है और वह जगह कीमती हो गई है। पहले से चोर-उचक्के के नाम पर यह जाति बदनाम है ही। फिर इन्हें बदनाम कर, इनके मकान जलाकर भगाया जा सकता है। पारधी लोग खेतीबाड़ी, छोटा-मोटा व्यापार करके पैसा कमाकर गाँव के सामने सीना तानकर चल रहे हैं और गाँव के लोगों की बराबरी करके नगरपालिका का चुनाव लड़ रहे हैं। इतनी हिम्मत इन लोगों की बढ़ गई है। यह बात राजनेता, व्यापारी और लोगों को हजम नहीं हो रही थी। इसलिए पुलिस से मिलकर पारधी के खिलाफ यह अफवाहें फैला दी गईं कि ये लोग गाँव में डाका डालने वाले थे और पानी की टंकी में जहर मिलाकर लोगों को मार डालना चाहते थे। कोर्ट में दंगा करके खुद को जलाने की बात पर वहाँ पूछताछ करने पर पता चला कि जिसके बेटे को चोरी के इल्जाम में घर से उठाकर ले गए, उसका क्या कसूर है हमें बताइए, कहने पर वहाँ के पुलिस इंस्पेक्टर ने कुछ औरतों को मारा-पीटा। इसी गुस्से में 55 वर्षीय बन्साबाई बंसी पवार ने यह कहा कि अपने शरीर पर मिट्टी का तेल डालकर जला लूँगी, तो एक इंस्पेक्टर ने कोर्ट में बोला कि आप धमका रहे हैं। उसी ने माचिस औरत के हाथ में दी और कहा कि जला ले। बन्साबाई पवार खुद को आग लगाकर जलाने लगी और लोग देखते रह गए। इसमें एक सात साल की लड़की भी अपनी माँ के शरीर से चिपटने पर जल गई। दो दिन के बाद, जब मैं कलम गाँव में ही था, वह मर गई। मैं महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री से इस हादसे के बाद मिला और उनसे सी. आई.डी. की जाँच करवाने की माँग की। मैंने मुख्यमंत्री को यह भी बताया कि जो पुलिस पारधी को गुनाहगार करार देकर पानी में जहर मिलाने की बात कर रही है, क्या वहाँ के 11 बस्तियों में बसने वाले पारधी लोग, जो चोर-उचक्के हैं, अगर किसी ने पानी में जहर मिला दिया तो मरने वाले नहीं थे? सच्चाई तो यह है कि वहाँ के राजनेताओं की इनके मकान जलाने के बाद पुनर्वास के नाम पर 10-15 करोड़ रुपए की जमीन हड़प कर इनको गाँव के बाहर ढकेलने की साजिश है। हमारी माँग है कि इन लोगों की जहाँ 11 बस्तियाँ बसी हुई थी, वहीं पर पुनर्वसन हो, नहीं तो हम खामोश रहनेवाले नहीं हैं। ऐसा कहने पर महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने कुछ अच्छे कदम उठाए और अनुसूचित जाति के कानून के अनुसार 70-80 लोगों को पकड़वाया। लेकिन जो बड़े राजनेता इस साजिश के पीछे थे वह पकड़े नहीं जा सके और भाग गए। वह पुलिस के हाथ नहीं लगनेवाले क्योंकि पुलिस ही उनको बचानेवाली है। आखिर वह राजनेता है। फिर यही मकान जलानेवाले राजनेता समझौता करके पारधी लोगों के ऊपर दबाव डालकर उनको मदद करने के बहाने धीरे-धीरे यह केस जहाँ के तहाँ खत्म कर देंगे। यही हमारे देश की राजनीति है। बड़ी मछलियाँ सब कुछ निगल जाती हैं और छोटी मछलियाँ जाल में फँस जाती हैं। यही हमारे देश में आजादी के बाद से होता आया है। क्या कलम गाँव में भी यही होनेवाला है, यह सब देखना बाकी है। लेकिन गरीब तबके में घुमन्तू, खानाबदोश, विमुक्त जनजाति, आदिवासी, पिछड़ा दलित वर्ग इस देश में आजादी के लिए तरस रहा है। जब तक उन लोगों पर खुलेआम अत्याचार और उनके घर जलाने का सिलसिला जारी रहेगा तब तक इस देश में आजादी मिली है, यह कहना ही गलत होगा। इतना सही है कि गोरे की जगह काले आए, इनका रंग बदला लेकिन कर्म नहीं बदला बल्कि उससे भी ज्यादा बुरे कर्म करने वाले बन गए। हमारे देश में यह सबसे बड़ी अफसोस की बात है। ■

नगरनार में सरकारी दमन

■ ए. के. अरुण

छत्तीसगढ़ का आदिवासी बहुल गाँव 'नगरनार' इन दिनों पुलिस छावनी में तब्दील कर दिया गया है। पाँच हजार आबादी वाले इस गाँव में आजकल सामान्य जनजीवन के बदले पुलिस प्रशासन की धूम है। नगरनार के कोई 300 से भी ज्यादा लोगों को पुलिस हिरासत में ले लिया गया है। महिलाएँ और बूढ़ों को भी नहीं छोड़ा गया है। वहाँ एक महिला की पुलिस हिरासत में ही मृत्यु हो चुकी है, तो एक तीन महीने की बच्ची गाँव में अपने बाबा के पास है और माँ पुलिस हिरासत में नगरनार से सैकड़ों किलोमीटर दूर जिला मुख्यालय जगदलपुर भेज दी गयी है। नगरनार के अलावे आमागुड़ा, कस्तूरी और मगनपुरी गाँव भी पुलिस की पूरी निगरानी में हैं। सामान्य जनों का इन गाँवों में आना-जाना प्रतिबन्धित कर दिया गया है। छत्तीसगढ़ पुलिस की सीधी धमकी है, ''कोई चालाकी दिखाने की कोशिश न करे वर्ना सबक सिखा दिया जाएगा।''

यह कोई आज की 'अयोध्या' का वाक्य नहीं है जहाँ राम मन्दिर के ठेकेदार शिला पूजन की धमकी दिए हुए हैं, बल्कि यह तो आदिवासी, उनके जीने के अधिकार तथा उनके सम्मान की रक्षा के लिए अटल रहने के उनके संकल्पों का दण्ड है जो बस्तर जिले के नगरनार क्षेत्र के आदिवासियों को प्रशासन द्वारा दिया जा रहा है। भारतीय संविधान में ग्राम सभा की मर्यादा और महत्ता को स्वीकार कर लेने के बाद भी राज्य सरकार की हेंकड़ीं ने स्थानीय स्वशासन की परम्परा और उनकी स्वेच्छा निर्णयों को 'विकास विरोधी' बताकर जुल्म और दमन का हथियार चला दिया है। ''लंगोटी वाले आदिवासी'', ''पैंट-शर्ट वाले साहब'' के सामने बेबस हैं। लेकिन अब दो-दो हाथ करने को भी तैयार है।

दरअसल सरकार बस्तर के नगरनार व अन्य तीन गाँवों की जद में इस्पात कारखाना लगाना चाहती है। पर इसके लिए जमीन का एक बड़ा भाग अधिग्रहित करना है। वहाँ के ग्रमीण आदिवासी अपनी आजीविका व जीवन-यापन के एकमात्र नैसर्गिक साधन को छोड़ना नहीं चाहते। जानकार बताते हैं कि बस्तर का इतिहास गवाह है कि सरकार ने, विकास(?) के नाम पर, जब भी जो कुछ भी किया एकदम गलत और अमानवीय तरीके से किया। कुछ सरकारी परियोजनाएँ वहाँ लगी भी तो उससे विस्थापित लोगों और परिवारों को आजतक न तो उचित मुआवजा मिला न ही उन्हें पुनर्वासित किया गया। अब जबकि नगरनार में सरकार का 'राष्ट्रीय खनिज विकास निगम' (एन.एम.डी.सी.) एक इस्पात संयंत्र लगाना चाहता है तो

यह कोई आज की 'अयोध्या' का वाक्य नहीं है जहाँ राम मन्दिर के ठेकेदार शिला पूजन की धमकी दिए हुए हैं, बल्कि यह तो आदिवासी, उनके जीने के अधिकार तथा उनके सम्मान की रक्षा के लिए अटल रहने के उनके संकल्पों का दण्ड है जो बस्तर जिले के नगरनार क्षेत्र के आदिवासियों को प्रशासन द्वारा दिया जा रहा है।

अपनी बर्बादी को रोकने के लिए वहाँ के मूल निवासी बिना मुकम्मल व्यवस्था के अपनी जमीन सरकार को देना नहीं चाहते, जबकि सरकार अपने तंत्रों की मदद से यह जमीन हर हालत में हासिल करना चाहती है। जाहिर है यह संघर्ष वहाँ के ग्रामीणों के अस्तित्व और सरकार के निर्णय के बीच धीरे-धीरे और तेज होता जा रहा है।

इस पूरे प्रकरण में कहा जा रहा है कि नगरनार में प्रस्तावित लौह कारखाने का विरोध करने वाले 'विकास

विरोधी' हैं। वे बस्तर का विकास नहीं होने देना चाहते हैं। वहाँ के ग्रामीण कहते हैं कि हम विकास विरोधी नहीं हैं, लेकिन सरकार हमें यह बताए कि विकास किसका हो रहा है? इस विकास में नगरनार क्षेत्र के लोग कहाँ हैं? विकास की बलि तो चढ़ते हैं ग्रामीण किसान और मजदूर तथा इसकी मलाई चाटते हैं अमीर व तथाकथित पढ़े-लिखे शहरी लोग।

छत्तीसगढ़, कोरपुर एवं बस्तर के अब तक के लम्बे अनुभव से साफ है कि विकास में स्थानीय लोगों को विस्थापन, बिखराव और विनाश ही हाथ लगा है। कहने को कुछ स्थानीय ग्रामीणों को दैनिक मजदूर की अस्थाई नौकरी मिल भी गई हो लेकिन बैलाडीला के शोषण की

नगरनार में पुलिस की मदद से स्थानीय प्रशासन ने शाम-दाम-दण्ड-भेद के सारे हथकन्डे अपना कर दहशत का माहौल बना दिया है। वहाँ के ग्रमीण सहमे हुए हैं। अनेक जनसंगठनों के प्रतिनिधियों को नगरनार व इसके आसपास फटकने की इजाजत नहीं है। स्थानीय प्रशासन ग्रामीणों को मार-पीटकर उनकी जमीन के कागजात ले रहा है। करीब 300 से भी ज्यादा ग्रामीण पुलिस हिरासत में हैं। इसमें गर्भवती महिलाएँ और बूढ़े भी हैं, जिन्हें धमका कर सादे कागज पर हस्ताक्षर कराया जा रहा है।

कहानी तो जग जाहिर है। सवाल है कि आखिर जगदलपुर, भिलाई के मूल निवासी कहाँ गए? यहाँ खड़े कारखानों में वहाँ के मूल निवासियों का अनुपात 10 प्रतिशत से ज्यादा नहीं है। वह भी रहते हैं वहाँ की झुग्गी बस्तियों में। संविधान और आदिवासी विकास की नीतियों के तहत क्षेत्र के विकास में लोगों का विकास सुनिश्चित करने के लिए राज्य का हस्तक्षेप जरूरी है। इसलिए पं० नेहरू के पंचशील तथा इन्दिरा गाँधी के आदिवासी उपयोजना में शोषण की समाप्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। इस नीति के सही रूप से अमल न होने पर अब विकास में ग्राम सभा की अनुमति व सहमति को अनिवार्य कर दिया गया है। फिर भी नगरनार में जो हो रहा है उसे हर संवेदनशील व्यक्ति गाँव के लूट की संज्ञा देता है जिसमें स्थानीय मीडिया भी साथ है।

जब भी किसी गाँव की जमीन पर कोई बड़ा उद्योग स्थापित किया जाता है तो वहाँ सिर्फ अर्जित भूमि वाले ही नहीं उजड़ते है; उसके बाद कई गुणा शोषक बाहर से आकर किसान- आदिवासी की नासमझी और भोलेपन का फायदा उठाकर उन्हें तबाह कर देते हैं। वहाँ के लोगों की माँग है कि उद्योग लगाओ लेकिन उसमें पूरे प्रभावित क्षेत्र के लोगों के लिये इज्जत से जिन्दगी बिताने की व्यवस्था करो और उद्योग पर स्थानीय समाज की मालिकी का उसूल मानो जिसे भारतीय संविधान ने भी माना है।

नगरनार में पुलिस की मदद से स्थानीय प्रशासन ने शाम-दाम-दण्ड-भेद के सारे हथकन्डे अपना कर दहशत का माहौल बना दिया है। वहाँ के ग्रमीण सहमे हुए हैं। अनेक जनसंगठनों के प्रतिनिधियों को नगरनार व इसके आसपास फटकने की इजाजत नहीं है। स्थानीय प्रशासन ग्रामीणों को मार-पीटकर उनकी जमीन के कागजात ले रहा है। करीब 300 से भी ज्यादा ग्रामीण पुलिस हिरासत में हैं। इसमें गर्भवती महिलाएँ और बूढ़े भी हैं, जिन्हें धमका कर सादे कागज पर हस्ताक्षर कराया जा रहा है। पिटाई से सैकड़ों लोगों की हालत खराब है। इन लोगों का जुर्म यह है कि वे सरकार को अपनी जमीन बेचने से इनकार कर रहे हैं। लोगों पर सी.आर.पी.एफ. की धारा 107, 116, 151 के तहत मुकदमे दर्ज कर दिये गए हैं। सत्य यह है कि पूरे प्रकरण में सत्ता की दावेदार राजनीतिक पार्टियाँ व उनके नेता खुलकर प्रशासन के साथ हैं। लोगों के मददगार जनसंगठन पूरी ताकत से मुकाबला कर रहे हैं। लेकिन जनता के हमदर्द बनने का अंजाम यह है कि पुलिस उन्हें झूठे आपराधिक मुकदमों में फंसाना चाहती है। बहरहाल नगरनार के लोगों का यह संघर्ष जहाँ सरकारी बर्बरता को उजागर कर रहा है वहीं लोगों में अपने अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ने का साहस भी भर रहा है। ■

(पेशे से डॉक्टर, ए.के. अरुण आजादी बचाओ आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता तथा स्वतंत्र लेखक हैं।)

श्री रणजित नाईक, ऑल इंडिया बंजारा सेवा संघ (ए.आई.बी.एस.एस.) के अध्यक्ष हैं तथा वर्तमान में बंजारों के समग्र विकास हेतु समर्पित होकर कार्य कर रहे हैं।

ऑल इंडिया बंजारा सेवा संघ का स्वर्ण जयंती महोत्सव

ऑल इंडिया बंजारा सेवा संघ (ए.आई.बी.एस.एस.) की स्थापना 1953 में श्री. वी. पी. नाईक द्वारा हुई तथा जिसका उद्घाटन श्री. लाल बहादुर शास्त्रीजी (तत्कालीन रेलमंत्री, भारत सरकार) द्वारा दिग्रस शहर, जिला- यवतमाल, महाराष्ट्र में दिनांक 30 जनवरी, 1953 में हुई। इस घटना

इसलिए मित्रों! हमें उच्चवर्ग की जाति एवं धर्म पर आधारित खेल की कला को सीखना होगा, जिससे हमारे लोगों को सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सके। अन्यथा आज के धर्म एवं जाति पर आधारित राजनीति एवं सरकार की चूहों की दौड़ में हम कहीं के नहीं रहेंगे और पूरी तरह से लुप्त हो जाएँगे।''

को आज 50 साल पूरे हो रहे हैं। इस उपलक्ष में ए.आई. बी.एस.एस. अपनी स्थापना का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव समारोह 30-31 जनवरी, 2003 को दिग्रस शहर, जिला यवतमाल, महाराष्ट्र में मनाएगा। विशेषकर ए.आई.बी.एस. एस. राष्ट्रीय नेता श्री. वी.पी. नाईक एवं लाल बहादुर शास्त्रीजी के प्रतिमाओं की स्थापना उसी स्थान पर करेगा, जहाँ पर ए.आई.बी.एस.एस. की पहली महासभा का आयोजन हुआ था। इस ऐतिहासिक समारोह में शामिल होने का दुर्लभ मौका बंजारों के जीवन में बार-बार नहीं आएगा। इस स्थान का नामकरण श्री ठक्कर बापा नगर किया गया था। वैसे ही बंजारों की काशी माने जानेवाली पोहरागढ़ में धार्मिक कार्यक्रम का आयोजन भी किया गया है। पोहरागढ़ दिग्रस शहर से 15 कि. मी. दूरी पर है।

ऐसी आशा है पूरे देश से लगभग 5 लाख बंजारे इस समारोह में शामिल होंगे। ए.आई.बी.एस.एस. देश के सर्वोच्च संवैधानिक व्यक्ति को इस समारोह के लिए आमंत्रित करेगा। प्रतिमाओं का अनावरण अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्ति द्वारा किया जाएगा।

इस सिलसिले में संघ द्वारा जारी किए गए द्वितीय परिपत्रक के अनुसार संघ का एक प्रतिनिधिमंडल महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री विलास राव देशमुख से मिला तथा 6 करोड़ बंजारों की इस ऐतिहासिक स्वर्ण-जयंती समारोह की तैयारियों एवं सफलता के लिए राज्य सरकार की सहायता, सहभाग एवं मदद की मांग की। इस प्रतिनिधि मंडल के सदस्य थे- रणजित नाईक, अध्यक्ष, ए.आइ.बी. एस.एस., श्री घोंडा राम राठौड़-एम.एल.सी., श्री राजू नाइक, श्री अर्जुन राठौड़, श्री मान सिंह पवार एवं श्री शंकर पंवार।

संघ के एक परिपत्रक में कहा गया है कि ''छः करोड़ बंजारों की एकता की ताकत एवं उनकी क्षमता को देश के राजकर्ता, प्रिंट एवं इलैक्ट्रानिक मीडिया एवं आम

जनता को दिखाने के लिए इस कार्यक्रम को बड़े पैमाने पर सफल करना होगा।

धर्म एवं जाति पर आधारित आज के सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य में हमारे अस्तित्व को बचाने के लिए हमें भी यह अनिवार्य खेल खेलना होगा। सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में हमारी हिस्सेदारी माँगने के लिए भी यह जरूरी है।

आपने यह अवश्य गौर किया होगा कि उच्च वर्ग के लोग जातिवादी राजनीति छुपे हुए कार्यक्रम के तहत करते हैं, जिससे उनकी जाति एवं वर्ग के हितों की रक्षा हो। जबकि यही कार्यक्रम पिछड़े वर्ग, दलित एवं जनजातियाँ द्वारा होकर शोरगुल करते हैं जिसका कोई स्पष्ट नतीजा नहीं निकलता है। इसलिए मित्रों! हमें उच्चवर्ग की जाति एवं धर्म पर आधारित खेल की कला को सीखना होगा, जिससे हमारे लोगों को सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सके। अन्यथा आज के धर्म एवं जाति पर आधारित राजनीति एवं सरकार की चूहों की दौड़ में हम कहीं के नहीं रहेंगे और पूरी तरह से लुप्त हो जाएँगे।''

बंजारा संघ ने इस समारोह की प्रारम्भिक तैयारियों के लिए 'कार्यक्रम पत्रिका' भी जारी किया है। इस कार्यक्रम पत्रिका में अन्य बातों के अलावा ए.आई.बी.एस.एस. के संविधान को अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, कन्नड़ एवं तेलगू भाषाओं में प्रकाशित कराना, संत श्री सेवालाल एवं स्व. श्री वी.पी. नाईक की जीवनी एवं कार्यों पर विभिन्न भाषाओं में छोटी पुस्तिका का प्रकाशन एवं देश के बंजारों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजकीय स्थिति पर एक पुस्तिका के रूप में प्रेस विज्ञप्ति का प्रकाशन सम्मिलित है।

अधिक जानकारी के लिए ए.आई.बी.एस.एस. के दूरभाष पर संपर्क करें- 022- 641 62 87/ 641 67 77 और ई. मेल: aibss@ vsnl. net, वेबसाइट http:// personal. vsnl. com/ aibss. ■

राष्ट्रपति की चेतावनी

"...ऐसा न हो कि आने वाली पीढ़ियाँ यह कहें कि भारतीय गणतंत्र का निर्माण हरित धरती और उन मासूम आदिवासियों के विनाश की नींव पर हुआ था जो वहाँ सदियों से निवास कर रहे थे। एक महान समाजवादी नेता ने एक बार कहा था कि दुनिया को बदलने की जल्दबाजी में कोई महान व्यक्ति किसी बच्चे को टक्कर मार कर गिरा देता है, तो वह भी अपराध करता है। भारत के बारे में भी यह कहने की नौबत न आये कि अपने विकास की हड़बड़ी में इस महान गणतंत्र ने हरित धरती माता को नष्ट-भ्रष्ट किया और अपने आदिवासी समाजों को उजाड़ा है।..."

(गणतंत्र दिवस 2001 के अवसर पर राष्ट्र के नाम संदेश से)

अलक्षितों की संघटना

■ के. एम. मैत्रि

(कर्नाटक राज्य के बल्लारि जिले के अर्द्ध-घुमन्तू टेन्टवासियों के बीच किए गए सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण प
आधारित एक रिपोर्ट। इस सर्वेक्षण का काल अक्टूबर-नवम्बर-2001 है।)

अलक्षित कौन?

वे सभी लोग जो सरकार की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत नहीं आते और सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक सुविधाओं से वंचित हैं तथा वे समुदाय जो कि भारतीय संविधान द्वारा चिन्हित नहीं हैं या संवैधानिक लाभों का उपयोग नहीं कर पा रहे हों, ऐसे लोग अलक्षित लोग कहे जाते हैं।

कर्नाटक में बेड गंपण, ओडिग, लालगोंड, वक्कै कुरुब तथा अन्य समुदाय संविधान के अन्तर्गत चिन्हित नहीं हैं। अतः ये लोग अलक्षित हो गए हैं तथा समाज द्वारा उपेक्षित हैं।

टोक्रे कोलि (गंगामत) और गोंड जनजातियों के अन्य पर्यायी गोत्र भी अलक्षित हैं। उनके उपसमूह भी वंचित हैं तथा सरकार से उन्हें कोई लाभ प्राप्त नहीं है।

टेन्ट-वासियों के अभिलक्षण

बल्लारि जिले के टेन्ट-वासियों के अन्तर्गत सामान्य कारक और कुछ अन्तर निम्न हैं–

अन्तर कारक : 1. भाषा, 2. व्यवसाय, 3. देवता 4. सामाजिक ढाँचा, 5. आर्थिक ढाँचा, 6. स्थितियाँ 7. जाति सभा, 8. त्योहार इत्यादि।

सामान्य कारक : 1. घुमन्तूपन, 2. टेन्ट के मकान 3. धार्मिक भिक्षावृत्ति 4. अकृषक पृष्ठभूमि, 5.अधि कांशतः, शहरी परिवृत्त में रहना, 6. गरीबी, 7. निम्नतम सामाजिक स्थिति, 8. असाक्षरता इत्यादि।

अर्द्ध-घुमन्तू बुडुग जंगम, चन्नदास, गोर्सगि, हाँडि-जोगि कोरमा, मादिग, शिल्येक्यात सिंधोलु, दुरुग-मुरुगि, सुड्गा सिद्धा जातियों को अनुसूचि जातियों में रखा गया है। नाय मोंडरु, हक्कि-पिक्कि अनुसूचित जनजातियों में आ हैं। बारिकेर, बैल अक्कसलि गंटी हेलवा और गोंधलि पिछड़ी जातियों में आते परन्तु ये सभी वंचित अ हाशिए के लोग हैं। ये स कपड़े के टेन्टों में अत्य दयनीय जीवन व्यतीत क हैं। इनमें से अधिकांशतः ार्मिक भिक्षावृत्ति के लोग और जीवनयापन के लि

गुडार निवासियों की बैठक–होसपेट (जिला–बल्लारि) कर्नाटक   छाया: लेखक

प्लास्टिक, शीशे के टुकड़े तथा कूड़ा बटोरने पर भी आश्रित हैं। यदि ऐसा संभव नहीं होता है तो यह पास की नदी या जंगल में शिकार करते हैं या लोगों से पैसे या सामान माँगते हैं। उन्हें कोई मूलभूत सुविधा उपलब्ध नहीं है। इन टेन्ट-वासियों का समुदाय तथा वासस्थान के तौर पर विस्तृत वर्णन निम्नलिखित हैं :-

बल्लारि जिले के पट्टाविहीन एवं घरविहीन अर्द्ध-घुमन्तू टेन्टवासी

समुदाय	रिहायशी स्थान	परिवारों की संख्या			जनसंख्या		
		पट्टाविहीन	पट्टा वाले	कुल	पुरुष	स्त्री	कुल
1	2	3	4	5	6	7	8
I. अनुसूचित जाति							
1. आदि कर्नाटक	1. श्रीधरगड्डे कैंप	–	1	1	2	3	5
2. बुडुग जंगम	1. बल्लारि शहरी	–	20	20	47	40	87
	2. श्रीधरगड्डे कैंप	–	44	44	88	85	173
	3. कुरुगोडु	12	18	30	84	66	150
	4. होसपेट शहरी	67	–	67	146	155	301
	5. कंम्प्लि शहरी	22	–	22	53	50	103
	6. वीरपुर	4	–	4	4	4	8
	7. सिरगुप्पा शहरी (Siraguppa)	47	–	47	105	111	216
	8. बलकुंदि	4	9	13	30	28	58
	9. एच. हेसल्लि	3	–	3	6	5	11
	10. हलेकोटे	4	2	6	9	11	20
	11. मालापुर	2	2	4	8	8	16
	12. टेक्कलकोटे	–	9	9	19	19	38
3. चन्नदास	1. श्रीधरगड्डे कैंप	–	10	10	18	18	36
	2. कुडुटिनि (Kudutini)	39	–	39	94	85	179
	3. कुरुगोडु (Kurugodu)	8	14	22	53	38	91
	4. कंम्प्लि	17	–	17	35	37	72
	5. मालप्पान गुडि (Maldapana gudi)	2	–	2	6	8	14
4. गोसंगि	1. श्रीधरगड्डे कैंप	–	22	22	56	48	104
	2. होसपेट शहरी	83	–	83	155	152	307
	3. कमलपुर	6	–	6	16	13	29
	4. एम.एम. हल्लि	–	13	13	21	19	40
5. हांडि जोगि	1. कुरुगोडु	43	16	59	124	120	244
6. कोरमा	1. श्रीधरगड्डे कैंप	–	30	30	59	57	116
	2. होसपेट	2	–	2	1	4	5
7. मादिग	1. होसपेट	1	–	1	1	2	3
8. शिल्येक्याता	1. श्रीधरगड्डे कैंप	–	65	65	133	126	249

	2. टेक्कलकोटे	–	9	9	14	14	28
9. सिंधोलु	1. श्रीधरगड्डे कैंप	–	19	19	36	31	67
	2. एच.बी.हल्लि शहरी	2	–	2	7	4	11
	3. कमलपुर शहरी	3	–	3	5	8	13
	4. कंप्लि शहरी	13	–	13	23	13	36
	5. कूडल्गि शहरी	4	–	4	13	8	21
	6. केट्टुर	3	–	3	8	9	17
	7. सिरिगेरि	11	–	11	31	23	54
	8. तेक्कलकोटे	23	17	40	78	83	161
10. सुडुगाडु सिद्धा	1. कंप्लि शहरी	–	48	48	92	80	172
	2. होसपेट	4	–	4	10	8	18
	कुल	408	402	810	1707	1611	3318
II अनुसूचित जनजाति							
1. हक्कि-पिक्कि	1. बल्लारि शहरी	–	50	50	61	73	134
	2. होसपेट शहरी	16	–	16	23	26	49
	3. कंप्लि शहरी	47	66	113	204	196	400
	4. कारिगनूरु	–	40	40	71	86	157
	5. साणापुर	12	–	12	20	18	38
2. नायक(मोंडरु)	1. कंप्लि शहरी.	10	–	10	12	22	34
	कुल	85	156	241	395	425	820
III अन्य पिछड़े वर्ग							
1. बारिकेर	1. होसपेट	1	–	1	1	1	2
2. बैला अक्कसलिग	1. होसपेट	1	–	1	3	2	5
3. गंटि हेलवा	1. श्रीधरगड्डे कैंप	37	–	37	76	68	144
	2. कंप्लि शहरी	–	9	9	21	17	38
4. गोंधलि	1. कंप्लि शहरी	29	–	29	62	52	114
	कुल	68	9	77	163	140	303
सकल योग I+II+III		561	567	1128	2265	2176	4441

बल्लारि जिले के उपरोक्त घुमन्तू, दिनांक 13 **फरवरी,** 2002 **को होसपेट में संगठित हुए और 'गुडार गुडुसि निवासिगल कल्याण संघ' का निर्माण किए।**

अलक्षित लोग तथा समुदाय, सरकार और समाज दोनों से उपेक्षित हैं। वे दुःख भोगते हैं। इन लोगों तथा समुदायों के उठने का यही तरीका है कि वे संगठित हों तथा अपने बुनियादी मुद्दों के लिए संघर्ष करें।

उन्हें संगठित होकर निम्नलिखित मूलभूत सुविधाओं को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए :

1. आश्रयघर, 2. हरा राशन कार्ड, 3. पेय जल, 4. भाग्य ज्योति लाइटें, 5. वृद्धा अवस्था पेंशन, 6. विधवा पेंशन, 7. विकलांगता पेंशन, 8. जाति प्रमाण-पत्र, 9. व्यक्तिगत ऋण, 10. आँगनबाड़ी तथा आश्रम स्कूल, 11. समुदाय भवन इत्यादि। ■

राष्ट्रीय गैर-अनुसूचित हिन्दुस्तानी भाषा सम्मेलन संपन्न

विगत 23-24 मार्च, 2002 को राजधानी दिल्ली में 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' तथा 'आदिवासी मामलों का मंत्रालय', भारत सरकार के सहयोग से गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा द्वारा आदिवासी भाषाओं के विशेष संदर्भ में 'राष्ट्रीय गैर-अनुसूचित हिन्दुस्तानी भाषा सम्मेलन' का आयोजन किया गया। दो दिन चले इस सम्मेलन के विभिन्न सत्रों में गैर-अनुसूचित भाषाओं से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर विचार विमर्श हुआ। वक्ताओं ने अपने प्रपत्रों में भूमंडलीकरण के दौर में इन भाषाओं के लुप्त हो जाने के खतरे, प्रांतीय भाषाओं के अनुरक्षण की आवश्यकता और शिक्षण तथा संचार का माध्यम बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। वक्ताओं ने आदिवासी भाषाओं को हिन्दी की राष्ट्रीय मुख्यधारा से जोड़ने पर भी बल दिया।

सम्मेलन के दौरान ''राष्ट्रीय लोक-भाषा कवि सम्मेलन'' का भी आयोजन किया गया जिसमें बोडो, लेप्चा, छत्तीसगढ़ी, कुमाउनी, संताली, राजस्थानी तथा हो भाषाओं के कवियों ने कविता पाठ किया।

इस सम्मेलन में विभिन्न भाषाओं के विद्वान, संसद के दोनों सदनों के सदस्यों तथा केंद्रीय मंत्री श्री कड़िया मुंडा के साथ-साथ लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान श्री विष्णु प्रभाकर, श्री गंगा प्रसाद विमल, प्रो. इन्दिरा गोस्वामी तथा प्रख्यात पर्यावरणविद् श्री सुन्दर लाल बहुगुणा ने भी भाग लिया। इस भाषा सम्मेलन में सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया।

नई दिल्ली में सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव

1. मंगोल और आस्ट्रिक भाषा-समूह की दो प्रतिनिधि भाषाओं – बोड़ो व संताली को शीघ्र संविधान की 8वीं अनुसूची में परिगणित किया जाए और साथ ही अन्य गैर-अनुसूचित भाषाओं के दावों पर भी विचार किया जाए।

2. संविधान के अनुसार मातृभाषाओं में प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए केंद्रीय/राज्य सरकारें ठोस कदम उठाएँ।

3. जनजातीय भाषाओं के सरंक्षण-संवर्धन के लिए स्वायत्त राष्ट्रीय साहित्य अकादमी का गठन अविलम्ब किया जाए जिसे केंद्रीय सरकार पूर्णत: सहयोग प्रदान करे तथा राज्य सरकारें भी इस दिशा में कार्यवाही करें।

4. मानव संसाधन विकास मंत्रालय इन भाषाओं के सर्वांगीण विकास हेतु अलग से निदेशालय गठित करे।

5. इन भाषाओं के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए नई दिल्ली में गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा को 'नोडल एजेन्सी' के रूप में केंद्रीय/राज्य सरकारें मान्यता दें।

6. भाषाई अल्पसंख्यकों तथा जनजातीय भाषाएँ आज सूचना प्रौद्योगिकी (आई.टी.) की आँधी में समाप्त न हो जाएँ, इसके लिए भारत सरकार का नवगठित 'सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार मंत्रालय', विशेष कदम उठाए और एक निश्चित अवधि में यह काम पूरा हो सके, यह सुनिश्चित करना चाहिए।

7. नई दिल्ली में प्रतिवर्ष गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा के तत्वावधान में राष्ट्रीय सम्मेलन/ कार्यशाला का आयोजन हो। संबद्ध सभी सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाएँ/ विभाग हर प्रकार का सहयोग दें।

8. मंगोल तथा आस्ट्रिक समूह की भाषाओं के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए केंद्रीय और राज्य सरकारों पर दबाव ग्रुप के रूप में सांसदों का एक कार्य-दल गठित करना चाहिए तथा सभी सकारात्मक पहल या आंदोलन जारी रखें जाएँ।

9. राज्य सरकारें अपने क्षेत्र की प्रमुख गैर-अनुसूचित, विशेष रूप से आदिवासी भाषाओं को संविधान के अनुच्छेद 345 के अनुसार 'ऑफिशियल लैग्वेंजेज' का दर्जा शीघ्र प्रदान करें।

10. दूरदर्शन / आकाशवाणी पर गैर-अनुसूचित भाषाओं, विशेष रूप से जनजातीय भाषा एवं संस्कृति पर आश्रित विविध कार्यक्रम प्रसारित किए जाएँ।

11. राष्ट्रीय स्तर पर इन भाषाओं को मान्यता / सम्मान दिलवाने के लिए विभिन्न आंदोलन-कार्यक्रम आयोजित करते रहने के लिए श्री सालखन मुर्मू, सांसद; श्री एस.के. बैसोमुथियारी, सांसद; श्री यू.जी. ब्रह्म, सांसद; प्रो. गंगा प्रसाद विमल तथा डॉ. रमेश भारद्वाज की पाँच-सदस्यीय राष्ट्रीय समिति गठित की जाती है। ■

(पारित प्रस्तावों का श्रोत - गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा द्वारा प्रकाशित मासिक 'मंगल प्रभात')

प्रस्तुति : **अनिल कुमार पाण्डेय**

लोक अधिकार परिषद – एक अभियान

''शासन से पहले है 'लोक'! हमें हमारा हक मिले! लोकतंत्र बना रहे!''

ये नारे लोक अधिकार परिषद ने दिये हैं जिसका गठन हाल ही में कार्यकर्ताओं एवं चिंतकों के राष्ट्रीय मंच के रूप में किया गया है। परिषद का मुख्य उद्देश्य जनजातियों, विमुक्त एवं घुमन्तू समुदायों तथा प्रवासी मजदूरों के हितों की रक्षा करना है। परिषद के प्रतिनिधि, जिनमें लेखक, संपादक तथा चिंतक हैं और जमीनी स्तर पर गंभीर कार्य कर रहे हैं, विगत 9 व 10 दिसम्बर, 2001 को मानवाधिकार दिवस के अवसर पर दिल्ली में मिले और आपसी विमर्श की शुरुआत की।

'इंडिया इंटरनेशनल सेंटर' के सभागार में आयोजित कार्यकर्ताओं एवं चिंतकों की इस राष्ट्रीय बैठक में विमुक्त, घुमन्तू व अन्य जनजातियों के समसामयिक मुद्दों, विकास एवं मानवाधिकार, हाशिए के लोगों का संगठन उनकी सामाजिक विकास प्रक्रिया, सामाजिक परिवर्तन की चुनौतियों आदि विषयों पर खुली चर्चा हुई।

कार्यकर्ताओं एवं चिंतकों की इस राष्ट्रीय बैठक का आयोजन 'सेन्टर फॉर स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज़' (सी. एस. डी. एस.) के कार्यक्रम ''लोकतंत्र, नृजातीय और ज्ञान'' के तहत किया गया था। कार्यक्रम के शुरुआत में छारानगर से आए युवा कलाकरों ने 'बूधन' नाटक का बड़ा ही मर्मस्पर्शी मंचन किया।

चित्र में मंच पर बैठे हुए (बाएँ से दाएँ): अनिल कुमार पाण्डेय, संपादक-बूधन, प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी, एक सम्मानित व्यक्ति, सुधीर देवरे एवं रमेश राही। छाया : सूरज देव बसन्त

लोक अधिकार परिषद ने मंच से जल, जंगल, जमीन, सम्बृद्धि, अस्मिता, अधिकार, न्याय, शिक्षा, रोजगार और शोषणरहित समाज की माँग सरकार से एक स्वर में की।

लोक अधिकार परिषद को डेरे में, कस्बे में, बाड़

में बस्ती में, गाँव में और हर जगह पहुँचाने का भी संकल्प लिया गया।

संभवतः डी.एन.टी. के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि इतने व्यापक स्तर पर राज्य के सवाल, मानवाधिकार व हाशिए पर के सवालों पर गंभीर बहस हुई।

इस अवसर पर जनजातियों के उत्थान के प्रति समर्पित बांग्ला की प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी ने 'राज्य एवं हाशिए पर के लोग' विषय पर बोलते हुए कार्यकर्ताओं से निरंतर संघर्ष करने की अपील की। उन्होंने कहा कि "डी.एन.टी. के इस आंदोलन को पूरे देश के साथ जोड़ें। इसे गाँव-गाँव और शहर-शहर, मेहनतकश मजदूरों, आदिवासियों और हाशिए पर रह रहे लोगों के बीच में पहुँचाना है। सरकार आम जनता की शोषक है। आम जनता के साथ मिलकर, संगठित होकर आंदोलन करने से ही समस्या का समाधान होगा। जो जिधर है, उधर ही संगठन का काम करो। अपने अधिकार के लिए लड़ो। सरकार आदिवासियों, मजदूरों की जमीन छीनकर उन्हें खानाबदोश और क्रिमिनल बनाती है।"

चर्चा के दौरान मराठी के सुप्रसिद्ध लेखक लक्ष्मण गायकवाड़, भाषा रिसर्च सेंटर के डॉ. अजय दांडेकर श्री सुभाष पावरा, श्री कांजी पटेल, अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ के अध्यक्ष श्री रणजित नाईक, तांडा के लेखक श्री आत्माराम कनिराम राठौड, कानूभाई चामठा, कन्नडा विश्वविद्यालय में जनजातीय अध्ययन के रीडर डॉ. के. एम. मैत्रि, ढोल पत्रिका के संपादक डॉ. सुधीर देवरे, दिल्ली के साँसी समुदाय के प्रमुख श्री रमेश राही आदि अनेक वक्ताओं ने अपने विचार रखे तथा संगठित हो देश के विभिन्न हिस्से में इस बाबत आंदोलन चलाने का संकल्प लिया।

दूसरे दिन कार्यक्रम के अन्त में भाषा रिसर्च सेन्टर, वड़ोदरा के डॉ. जी. एन. देवी ने सी. एस. डी. एस. के डॉ. शिव विश्वनाथन का आभार व्यक्त किया जिनके सहयोग से ही इतना बड़ा आयोजन संभव हो सका।

इसके बाद लोक अधिकार परिषद का एक प्रतिनिधिमंडल जनजातीय मामलों के मंत्रालय के सचिव से मुलाकात की तथा उन्हें चर्चा के दौरान निकले निष्कर्षों से अवगत कराया। प्रतिनिधिमंडल ने पूर्व प्रधानमंत्री श्री वी. पी. सिंह के आवास पर उनसे मुलाकात की। श्री वी.पी. सिंह ने आंदोलन को यथासंभव सहयोग देने का आश्वासन दिया। उसी क्रम में प्रतिनिधिमंडल ने देश के रक्षामंत्री एवं राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के संयोजक श्री जार्ज फर्नांडीस के आवास पर उनसे मुलाकात की। ■

प्रस्तुति : सूरज देव बसन्त

एजेंट बनें :

अनेक जगहों से हमें पाठकों की शिकायत मिली है कि 'बूधन' उन्हें उनके शहर में नहीं मिल पा रही है। पाठकों की शिकायत को ध्यान में रखते हुए हम एजेण्ट नियुक्त करना चाहते हैं। एजेंसी के लिए कृपया हमारे कार्यालय से संपर्क करें अथवा लिखें। —संपादक

बूधन प्राप्त करें :

1. **वाणी प्रकाशन बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, मंडी हाउस, नई दिल्ली**
2. **पुस्तक मंडप, स्टॉल नं 3, कला संकाय (दिल्ली विश्वविद्यालय नार्थ कैम्पस)**
3. **पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जी-2 कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001**
4. **गीता बुक सेंटर, शापिंग कॉम्पलेक्स, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय परिसर, नयी दिल्ली-67**

...क्योंकि वह साँसी है

■ सूरज देव बसन्त

"...साले, तुम चोरों की जमात, चोरों की ही चोरी हो रही है? कल तक तुम चोरी कर रहे थे और आज तुम्हारी चोरी हो गई तो हल्ला मचा रहे हो।...साँसी सब चोर होते ही हैं।" मंगोलपुरी थाने में पुलिस चोरी गए अपने 70 हजार रुपए की बाबत शिकायत करने गए साँसी युवक राजेश कुमार से कहती है। पुलिस उसे धमकाती है–"तुम साँसी लोग शराब बनाते हो। वह रुपया शराब का ही होगा। अब उसे भूल जाने में ही भलाई है नहीं तो अन्दर हो जाओगे..."

राजेश कुमार, पुत्र श्री अनन्तराम, ई-586, मंगोलपुरी दिल्ली का रहनेवाला है, वह दिल्ली विश्वविद्यालय में बी. ए.-तृतीय वर्ष का छात्र है और आजीविका के लिए प्रिटिंग प्रेस चलाता है, जो कि एक साँसी युवक है, पुलिस से कह रहा है–"साहब हमारे रुपए वापस दिलवाओ हमने चोर को पकड़कर आपके हवाले कर दिया है और उसने चोरी की बात कबूल भी की है।" किन्तु राजेश कुमार के घर से चोरी गए 70 हजार रुपए नहीं मिलते हैं।

राजेश कुमार, साँसी, दिल्ली विश्वविद्यालय का छात्र

घटना की शुरुआत 12-13 जनवरी, 2002 से होती है।

राजेश कुमार अपने ससुराल, मेरठ से दिनांक 21 दिसम्बर, 2001 को मंगोलपुरी में एक प्लाट खरीदने के लिए 70 हजार रुपए लाता है जिसे वह अपने घर के दीवान में सुरक्षित रख देता है।

दिनांक 12 जनवरी, 2002 को दीवान में रखे 70 हजार रुपए गायब हो जाते हैं। उन्हें अपने पड़ोस में रहनेवाले 'सोनू' नामक लड़के पर, जिसका उनके घर में आना जाना लगा रहता था, शक हुआ।

राजेश और उसके घरवालों ने सोनू को पकड़कर उससे पूछताछ की। उसने पड़ोस के लोगों –सुमन, सुमेर तथा रामकिशोर के नाम बताए। सुमन, सुमरे व रामकिशोर ने बताया कि रुपए सोनू (दूसरा) ने चुराए हैं। सोनू (दूसरा) से पूछताछ करने पर पता चला कि उसने गायब हुए 70 हजार रुपए अपने साथ काम करने वाले दोस्त साहिल को दिए हैं।

दिनांक 13 जनवरी, 2002 को रात्रि 8.30 बजे राजेश ने 100 नम्बर पर फोन कर इसकी जानकारी पी.सी.आर. के अधिकारियों को दी और सोनू (पहला), सोनू (दूसरा) व साहिल को पुलिस के हवाले कर दिया। पी.सी.आर. के अधिकारियों ने तीनों को मंगोलपुरी थाना अन्तर्गत संजय गाँधी अस्पताल की चौकी के हवाले कर दिया। उस समय चौकी में हेड कांस्टेबल तथा कांस्टेबल उपस्थित थे। उन्होंने चौकी इन्चार्ज के आने तक राजेश व उसके परिवार के अन्य सदस्यों को चौकी के बाहर प्रतीक्षा करने को कहा तथा वे इस बीच अभियुक्तों से पूछताछ करते रहे।

सुबह चार बजे सब-इंस्पेक्टर राजेश कुमार व नाथूराम जब चौकी पर पहुँचे तो प्रार्थी राजेश कुमार ने अभियुक्तों के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज कर रुपए बरामदगी का अनुरोध किया। किन्तु सब-इंस्पेक्टर राजेश कुमार व नाथूराम ने ऐसा न कर उल्टे राजेश कुमार व परिवार वालों को ही साँसी कह डाँटने लगे। राजेश कुमार के अनुसार पुलिसवालों ने उसे तमाचा भी मारा और उसे अन्य केस में फँसा देने की धमकी भी दी।

राजेश कुमार के अनुसार जब वह तथा उसके घर वाले निराश होकर घर पहुँचे तो पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में सब-इंस्पेक्टर नाथूराम उनके घर आया था और उसकी माँ को बिना किसी अपराध या शिकायत के मंगोलपुरी थाना ले गया है। थाने में काफी लोगों के कहने

छूटने के बाद 1000 रुपए लेकर ही उसकी माँ को रिहा किया गया।

स्थिति को काबू से बाहर जाता देख राजेश कुमार अशोक विहार थाना स्थित ए.सी.पी. विजलेंस के दफ्तर पहुँचा जहाँ ए.सी.पी. रामचन्दर से मिला। ए.सी.पी. ने शिकायत दर्ज कराई जिसकी डायरी संख्या 73, दिनांक 14 जनवरी, 2002 है तथा आश्वासन दिया कि इस शिकायत के खिलाफ कार्रवाई करेंगे। किन्तु उनके तरफ से

चोरी गए अपने रुपए की वापसी के लिए राजेश कुमार यहाँ से वहाँ दौड़ता रहा, क्योंकि वह साँसी है और पुलिस की निगाह में उसकी पूरी जमात ही चोर है। आखिर में राजेश कुमार ने अदालत की ओर रुख किया और दिल्ली उच्च न्यायालय में संविधान की धारा 226 के तहत 29.1.2002 को एक रिट याचिका दाखिल किया।

भी कोई कार्रवाई नहीं की गई।

मंगोलपुरी थाना के कार्यवाही से निराश होकर राजेश कुमार ने डी.सी.पी. (उत्तर पश्चिमी जिला) के दफ्तर में शिकायत दर्ज करवाई (डायरी संख्या 408, दिनांक 19.1.2002) साथ ही इन सभी शिकायत की प्रतियाँ दिल्ली के माननीय उपराज्यपाल, डी.सी.पी. (सतर्कता), केंद्रीय गृह मंत्रालय, भारत सरकार, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आयोग, नई दिल्ली को फैक्स द्वारा भेजी।

ऐसा प्रतीत होता है कि ऊपर के अधिकारियों का दबाव बनते ही मंगोलपुरी थाना ने सिर्फ सोनू (प्रथम), पुत्र श्री ओमप्रकाश के खिलाफ आई.पी.सी. की धारा 380 के तहत प्राथमिकी दर्ज किया जिसकी डायरी संख्या 39, दिनांक 16.1.2002 है।

इसके बाद थाना मंगोलपुरी में राजेश कुमार को बुलवाया और राजेश के कथनानुसार उससे पुलिस द्वारा बनाए गए बयान पर जबरदस्ती हस्ताक्षर करवाया गया।

राजेश कुमार द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय में दायर याचिका के अनुसार सोनू (प्रथम) की गिरफ्तारी के बाद उसकी निशानदेही पर साहिल नामक लड़के से पुलिस ने 22,000 रुपए बरामद कर लिए थे जिसे पुलिसवालों ने आपस में बाँट लिया था। प्राथमिकी दर्ज होने के बाद पुलिस ने सोनू (दूसरा), पुत्र श्री धर्मपाल सिंह के मामा के घर, अमन विहार से 20 हजार रुपए बरामद किया था।

पुलिसवालों के व्यवहार से यह स्पष्ट पता चल गया कि सभी पुलिसवाले आपस में मिलकर चोरी की जब्त रकम हजम कर गए और साजिश कर एकमात्र अभियुक्त सोनू (प्रथम) को जेल भेज बाकी सभी को मुक्त कर दिया।

चोरी गए अपने रुपए की वापसी के लिए राजेश कुमार यहाँ से वहाँ दौड़ता रहा, क्योंकि वह साँसी है और पुलिस की निगाह में उसकी पूरी जमात ही चोर है। आखिर में राजेश कुमार ने अदालत की ओर रुख किया और दिल्ली उच्च न्यायालय में संविधान की धारा 226 के तहत 29.1.2002 को एक रिट याचिका दाखिल किया। रिट याचिका में दिल्ली पुलिस आयुक्त, उत्तर-पश्चिमी जिला के उपायुक्त तथा थाना अध्यक्ष मंगोलपुरी को प्रतिवादी बनाया गया है। उक्त आरोप दायर रिट याचिका में लगाए गये हैं।

दिल्ली उच्च न्यायालय में दो न्यायाधीशों की खण्डपीठ ने विगत 23 अप्रैल, 2002 को उत्तर-पश्चिमी जिला के उपायुक्त, डी.सी.पी., ए.सी.पी., थाना इंचार्ज को तलब किया था और इस बाबत कई निर्देश दिए थे।

दिनांक 18 मई, 2002 को अदालत की खण्डपीठ ने पुलिस के पाँच लोगों के खिलाफ विभागीय जाँच के आदेश दिए हैं और 8 अगस्त, 2002 तक जवाब दाखिल करने के लिए कहा है। ■

सहयात्री पत्रिकाएं

1. **पहल** :- ज्ञानरंजन, 101, राम नगर, आधारताल, जबलपुर (म०प्र०)-482004
2. **कथन** :- रमेश उपाध्याय, 107, साक्षरा अपार्टमेंट, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
3. **समकालीन सृजन** :- श्री शंभुनाथ, 20, बालमुकुन्द मक्कर रोड, कलकता-700007
4. **संधान** :- सुभाष गाताड़े, बी 2/51, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110085
5. **कृति ओर** :- विजेन्द्र, सी-133, वैशाली नगर, जयपुर (राजस्थान)
6. **सम्बोधन** :- कमर मेवाड़ी, चाँदपोल, कांकरोली, राजसमन्द-313324 (राजस्थान)
7. **शेष** :- हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहारपुरा, जोधपुर-342002
8. **साम्य** :- विजय गुप्त, ब्रह्मरोड, अम्बिकापुर-497001 (म०प्र०)
9. **अलाव** :- रामकुमार कृषक, सी-3/59, सातदपुर विस्तार, करावल नगर, दिल्ली-110094
10. **समयान्तर** :- पंकज बिष्ट, 79-ए, दिलशाद गार्डेन-दिल्ली 110095
11. **वर्तमान साहित्य** :- विभूति नारायण राय, प्रथम तल, 1-2 मुकुन्द नगर, हापुड़ रोड, गाजियाबाद (उ०प्र०)
12. **युद्धरत आम आदमी** :- रमणिका गुप्ता, प्रणेश कुमार, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग
13. **कल के लिए** :- जयनारायण, अनुभूति प्लानिंग कॉलोनी के पीछे, सिविल लाइंस, बहराइच (उ०प्र०)
14. **इतिहास बोध** :- लाल बहादुर वर्मा, 1496 किदवई नगर, अल्लापुर, इलाहाबाद-211006
15. **दायित्व बोध** :- विश्वनाथ मिश्र, ने.पी.जी. कॉलेज, बड़हलगंज, गोरखपुर (उ०प्र०)
16. **छात्र संग्राम** :- निशान्त, पो. बा. 5, फे. ऑ.-भेटिया पड़ाव, हल्द्वानी, उ.प्र.
17. **सापेक्षः**- महावीर अग्रवाल, एच-24/8, सिविल लाइन, कसारीडीह, दुर्ग-491001
18. **संदर्श** :- सुधीर विद्यार्थी, शंकर नगर, बीसलपुर, पीलीभीत-262201
19. **नया पथ** :- राजेश जोशी एम.आई.जी. 99, सरस्वती नगर, जवाहर चौक, भोपाल (म०प्र०)
20. **हंस** :- राजेन्द्र यादव, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
21. **दस्तावेज** :- विश्वनाथ प्र० तिवारी, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ०प्र०)
22. **निष्कर्ष** :- गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, 59, खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर-228001
23. **सामयिक वार्ता** :-राजेन्द्र राजन, सी-28, गली न. 8ए, पश्चिम विनोद नगर, दिल्ली-110092
24. **सर्वनाम** :- विष्णुचंद्र शर्मा, ई-2 सादतपुर, दिल्ली-110094
25. **जयलोक** :- जयंत वर्मा, सेवा सदन, पोलीपाथर, नर्मदा रोड, जबलपुर-482008
26. **नीति मार्ग** :- जयंत वर्मा, 4-एम आई जी, त्रिवेणी कॉम्पलेक्स, रोशनपुरा, टीटी नगर, भोपाल-462003
27. **अरावली उद्घोष** :-हरिराम मीणा, 31, शिव शक्ति नगर, किंग्स रोड, अजमेर हाई-वे, जयपुर-302019
28. **शैक्षिक सन्दर्भ** :- राजेश खिंदरी, एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद-461001
29. **कथा देश** : - हरिनारायण, सी-52/ जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095
30. **उद्भावना** : अजेय कुमार, ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095
31. **नटरंग** : नेमिचंद्र जैन, बी-31, स्वास्थ्य विहार, विकास मार्ग, दिल्ली-110092
32. **मड़ई** : डॉ. कालीचरण यादव, बनियापारा, जूना बिलासपुर, बिलासपुर, छत्तीसगढ़-495001

प्रोमिस प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली-110095 से मुद्रित।